,,दृष्टव्य,,

इस पोथी के शीघ्र छपने आदि कई कारणों से कुछ अशुद्धियें रह गयी हैं यथा "भेट,, में 'खोने, के स्थान खोते १२० पृष्ठ पर आत्म विषयक,, के स्थान आत्मक विषयक एवं पृष्ठ १८५ पर 'प्रसिद्धी, के स्थान प्रसिद्धी आदि ग्रन्थ भी कयी एक हैं इन सब के लिये पाठकों से क्षमा मांग कर आगे ठीक कर देने की आशा दिलाते हैं।

कर्त्ता

ओ३म्

"जीवन"

"मुबारिक तथा धन्य हैं वे जीवन जो उत्तम
एवं पवित्र शिक्षाद्वारा आत्मा तथा हृदयको
युगपद् विकासित करके देश जाति एवं
अपने लिये लाभ दायक सिद्ध होते हैं
स्वर्गकी कुञ्जी उनके अपने पास है"

ए.वी 'वागीश' द्वारा लिखित व प्रकाशित

प० जीवाराम व शङ्करदत्त शर्म्मा ने
अपने "धर्मदिवाकर" प्रेस
मुरादाबाद में छापा

प्रथमबार १०००] [मू० १)

भेंट ।

यह पुस्तक पूर्ण प्रेम से उन महान् भावों की भेंट की जाती है कि जो व्यर्थ समय खोते और छिद्रान्वेषण के स्थान अपने जीवन की आलोचना करते हुवे उसको पवित्र एवं लाभ दायक बनाने की धुन में लगे रहते हैं ॥

उन्होंका प्रेमी

आ० ब्र० वागीश कर्त्ता

भाद्रपद शु० १

सम्वत १९६९

विनय।

प्रेमी मनुष्यों पूर्व इसके कि आप इस पुस्तक के भीतरी विषयों पर दृष्टि दें मैं आप से प्रेम पूर्वक दो चार बातें करना चाहता हूं मुझे विश्वास करना चाहिये कि आप भी सच्चे हृदय से मेरे साथ सहिमत होंगे, यद्यपि मेरा जीवन इस योग्य नथा कि मैं आपको किसी प्रकार का उपदेश विशेष करता क्यों कि मैं अपने जीवन की उन घटनाओं से कि जो मुझे कभीर नीचे ऊपर करती रहीं और करने में कामयाव होती रहीं हैं पूर्ण तया परिचितथा परन्तु विवेक(conscience) एक इस प्रकार की वस्तु है कि हम चाहें कुछ भी क्यों न करना चाहें वह भले एवं बुरे में भेद कर ही देता है उसकी आज्ञा

का पालन करना हमारा प्रत्येक का धर्म्म है मैं जो कुछ अगले पृष्टों में लिखने वाला हूं वह उसी की आज्ञा का फल है। इस पुस्तक में जो कुछ लिखा गया है आपके सामने है संभव है इस के लिखने में मैंने किसी प्रकार की भूल की हो, परन्तु वह भूल मेरी जान बूझ कर नहीं है यह भी संभव है कि इसके लिखने में मैंने किसी प्रकार का धोखा खाया हो, परन्तु आपको धोखे में न डालूंगा. इसमें जो कुछ लिखा गया है यदि वह सत्य एवं आपके लिये हित कारक हो तो अपने जीवन में इससे लाभ उठाइये यदि असत्य एवं अहित कारक हो तो इस को त्याग देना ही आपका धर्म्म होगा. मैं यद्यपि एक चेतन शक्ति का स्वामी हूं परन्तु चिरकाल से एक मट्टी के पुतले के साथ सम्बन्ध रहिने से किसी प्रकार की भूलकर जाना या धोखा खा जाना आश्चर्य्य नहीं

कहा जा सकता इस पुस्तक के लेख किस
प्रकार के वा कैसे हैं ? और यह किसी पर
कुछ प्रभाव डालसकेंगे या नहीं ? यह पुस्तक
क्यों लिखीगयी ? इसप्रकारके कई एक प्रश्न
हैं जो मुझपर किये जासकते हैं परन्तु इन
संपूर्ण प्रश्नों का मेरे पास कोई ऐसा उत्तर
नहीं कि जिससे आप सन्देह शून्य होसकें
या यूं समझिये कि मैं इन प्रश्नों का कुछ
भी उत्तर नही देना चाहता क्योंकि यह सब
भविष्यत् की बातें हैं वर्त्तमान समय से इन
का कुछ सम्बन्ध नहीं है इनका अभी अभी
समझ लेना हमारी बुद्धि से आगे है हां यह
क्यों लिखी गयी ? इस प्रश्न का उत्तर मैं देस-
कताहूं और वह यही है कि अपने विवेक
की आज्ञा का पालन किया है जोकि मेरा
धर्म्म था किसी प्रकार का जाति अथवा
देश पर उपकार नहीं किया गया हां यह
एक प्रकार का कर्त्तव्य भी कहा जा सकता

है कौनसा कर्त्तव्य ? जोकि हमारे सबके पिता परमात्मा ने प्रत्येक मनुष्य के लिये संसार में पांव रखते ही नियत कर दियाहै और वास्तव में जिसका नाम उपकार कहा जाता है वह भी एक प्रकार का कर्त्तव्य अथवा धर्म्म विशेष ही है इतना और भी कहिदेना उचित्त जान पड़ता है कि कोई मनुष्य इस पुस्तक को उच्च दृष्टि से देखो अथवा नीच दृष्टि से मेरे कर्त्तव्य में किसी प्रकार की हाणी की संभावना नहीं है क्यों कि छिद्रान्वेषण वुद्धि में सदैव अपना काम किया करती हैं उनपर किसी प्रकार का दोष नहीं लगाया जासकता किन्तु वह इस योग्य हैं कि भले मनुष्य उनपर उसी अवस्था में क्षमा करके अपने काम में लगे रहिना ही अपना कल्याण समझैं मैं इस प्रकोर की बातों को उपेक्षा दृष्टिसे देखना चाहता हूं ईश्वर करें कि मैं अपने अभिप्राय में सफलता

प्राप्तकरसकूं. मैंने जोकुछ इसमें लिखा है केवल मात्र कल्पना से ही काम नहीं लिया किन्तु अपनेसे उच्चश्रेणीके महानुभावोंका अनुकरण है इसीलिये स्थानस्पर उनकी साक्षीदीहै। अन्ततः प्रियप्रेमी पाठकों से हार्दिकविनय है कि वे कृपा करके एक बार भ्रमर वृत्ति से आचरण करके इस पुस्तकको आदि से अन्त तक देख जावें और अनुकूल का ग्रहिण एवं प्रति कूल का त्याग करके आत्मा को शान्त एवं आनन्दित करें इससे मुझे भी शान्ति एवं आनन्द होगा. ओम्।

आपका

आ० ब्र० वागीश कर्त्ता

स्थान मुज़फ्फर नगर

ओ३म्

"परमात्मा"

हमारे जीवनोद्देश्य और कर्त्तव्य एवं धर्म्मके केन्द्र परमात्मा हैं इसका प्रमाण हमें उसके पवित्र और निश्चल शासन के एक २ अन्श में मिलता है और मिलेगा जिनका नियम से जानना और जानकर विश्वास करना हमारा धर्म्म है। सत्य वस्तु को जानकर उसपर जीवन वर्त्ताव न करना पाप माना गया है। उपनिषदों में उसकी सच्चाई को बल पूर्वक वर्णन किया गया है और कहा गया है कि "उसी को जानकर तुम संसार के चक्र से छूट सकते हो और कोई मार्ग नहीं है।

हमें इस समय इस विचार में पड़ने की कोई आवश्यकता प्रतित नहीं होती कि ईश्वर की सत्ता को सिद्ध किया जावे। मेरे समीप नहीं नहीं संपूर्ण आस्तिक मात्र के समीप इस प्रकार की

चेष्टा वा इच्छा करनी भी पाप के तुल्य होनी चाहिये। उस महान् पिता के होने में संसार का विद्यमान होना ही प्रमाण रूप है किसी प्रथक् प्रमाण की कोई आवश्यकता नहीं है।

यदि परमात्मा न होते तो संसार की कोई वस्तु हमको दिखाई न देती नही २ हमको यह कहिना चाहिये कि "हमभी न होते," किन्तु हमारा सबका होना ही इस बात का प्रमाण है कि हमारे स्वामी भी प्रत्येक स्थान में हामारे साथ विराज मान हैं इटेली देश के अनन्य भक्त मेज़ीनी का कथन है कि मेरे समाने ईश्वर का सिद्ध करना भी उतना ही पाप है जितना कि उसकी सत्ताका न मानना पागलपन है हमको याद रखना चाहिये कि जिस प्रकार मृत्यु के मुख में जाते देखकर एक बीमार को उसके संगी साथी ढारसदेते हैं और समझाते हैं कि "कुछ चिन्ता म करो तुम अभी अच्छे हो जाओगे अभी औषधि किये देते हैं इत्यादि,, परन्तु वह उससे बच नहीं

सकता और नहीं उस परमात्मा के अटल नियम का कोई उल्लंघन कर सकता है। इसी प्रकार कोई पापाविष्ट आत्मा जो दिन रात पापोंसे आच्छादित रहिता है यदि अपने आपको इस आने वाले कष्ट से बचने की (जिनसे कि वास्तव में बचना असंभव है) ढारस देने के लिये अपने उस स्वामी से इनकार कर देवे तो कोई आश्चर्य्य की बात नहीं है। कबूतर बिल्ली को देखकर नेत्र बन्द करके समझ ही बैठताहै कि बिल्ली चली गयी। परन्तु इस प्रकार के मनुष्य इस योग्य भी नहीं होते कि उनसे किसी प्रकार की घृणा की जाये किन्तु वे आस्तिकों की दया के पात्र हैं। और इस योग्य हैं कि उनको सच्चा मार्ग बताया जावे

प्यारे नास्तिकों तुम उस धर्म पिता के जो कि हमारा और तुम्हारा सबका रक्षक है शत्रु नहीं हो। किन्तु वह दिन में सूर्य्य की चमकती हुई राशियों एवं रात के अन्धिकार में लहिलाते हुवे तारागण से तुम्हारी रक्षा करता है। तुम उसके

वैसे प्यारे एवँ दुलारे हो जैसे कि जगत के दूसरे जीव जन्तु। जिस समय तुम अत्यन्त कष्ट की अवस्था में हो जब तुम्हारे पर कोई आस्मानी आपत्ति आपड़े उस समय एकान्त में बैठकर अपने आत्मा एवँ विवेक से प्रश्न करो वह तुम्हें सच्चा और भला उत्तर देगा यदि तुम उस पर जीवन निर्वाह करोगे तो तुमको एक अलौकिक आनन्द कि प्राप्ति होगी जिसका वर्णन कि इन सांसारिक पुस्तकों में मिलना असँभव है। दलीलों ने युक्तियों से एवं अन्यान्य प्रकारों से तुम अपने न्यून विद्या वाले को निरुत्तर कर सकते हो परन्तु अपने आत्मा और आत्मिक भावों को दबा नहीं सकते वह कष्ट के समय अपने भीतरी भावों से उसको याद करही लेता है। क्या तुम उसकी प्रेम भरी ध्वनि को दबा सकोगे ? कदापि नहीं। किसी महात्मा का वचन है कि "हम परमात्मा को न्याय की युक्तियोंसे उतना सिद्ध नहीं करसकते जितना कि एकान्त सेवन करते हुवे अपने भीतरी भावों

तथो प्रकृति की छटाओं पर विचार करते हुवे प्रत्यक्ष कर सकते हैं

हम संसार के विचित्र दृश्यों को देख २ कर हैरान होते हैं, जहां जहां भी हमारी दृष्टि जाती है आश्चर्य्य जनक ही दृश्य दृष्टि आते हैं ऊँचीसे ऊँची पर्वतों की चोटियों से लेकर पृथिवी की गुफाओं कन्दराओं पर्य्यन्त उस पिताकी कुद्धी वैचित्र्य प्रतीत होरही है। चतुर्मासकी पृथिवी से निकली हुई हरी२ घासकी सौन्दर्य्य युक्त पत्तियां एवं पहाड़ को छोटी २ जड़ीबूटी वा वनस्पति के अन्धेरी रात्रि के तारों के समान नहीं चहाते एवं टिम टिमाते छोटे २ पुष्प उसकी महिमा को द्विगु-णित किये देते हैं। ऐसे समय में रात्के १२ बजेघर से निकल कर प्रकृति की आनन्द भी छटाओं को लूटने वाले कौन पत्थर हृदय हैं जो एक वार पर-मात्माके पवित्रनाम का उच्चारण न करते होंगे? वनस्पति की रङ्ग भरी सामग्री उसकी स्वभाविक रचना एवं सौन्दर्य्य उनके पुष्प पत्तों की नसबन्दी

यह सब उस अपार बुद्धिमान्के यशका गायन करती हैं तारोंभरी अन्धकार मय रात्रि में वृक्षों की शून्य अवस्था उनकी शाँशाँ मयी प्रिय ध्वनि ठण्डी २ वायुके आनन्दमय झोंके नदियोंकी ठैंठैं वृक्षोंकी शांशां किसी २ समय किसी २ रात्रि पर पक्षी की मीठीरशब्दध्वनि कौनसा हृदय है जिसको कि उस की यादके लिये उद्यत न कर देती होंगी।

किसी विशेष कारण से उसको जवाब देने वालों! ऐसे समय में एकान्त सेवन करने तथा अपनी हीन अवस्थापर विचार करने से सब विवाद मिट जायेंगे। यदि आपने विवेक को कुचल एवं पीस नहीं डाला तो तुमको सीधे मार्ग पर लेजाने की शक्ति रखता है, हमारे प्राचीन मुनियों का सिद्धान्त है कि "संपूर्ण संसार की रचना का चित्र हमारे शरीर में है" यह सत्य है ब्रह्माण्ड कीरचना का कोई चित्र ऐसा नहीं जो हमारे शरीर में नहो उसकी मेधा की सीमा लगाने वालों का धर्म्म है कि प्रथम अपने आप परदृष्टि दें पश्चात् संपूर्ण

चराचर जगत् की रचना विशेष पर। उसकी महिमा का बाह्य पदार्थों में अन्वेषण करने वाले बहुत हैं परन्तु सौभाग्य सम्पन्न ऐसे पवित्र आत्मा बहुत न्यूनहोंगे जो उसकी विविध रचनाके सौन्दर्य को अपने भीतर देखने वाले हैं। और देखकर उस का विनतिभाव से धन्यवाद करने वाले हैं। उस समय को छोड़ दीजिये जब कि हमारी बनावटका चित्र हमारे माता पिता के विचारों में वायुकी शकल में होता है। एवं उस समय को भी जाने दीजिये जब कि हमारा शरीर रज वीर्य्य की दो चार विन्दुवों में गुप्त होता है या, हमारा शरीर माता के गर्भ में निवास करता है और हमारे विषय में हमारी प्यारी मातायें नाना प्रकार की कल्पनायें उठा २ कर मन्सूबे गांठा करती हैं। क्योंकि उस समय की कथायें नतो हमको याद हैं और नहीं हो सकती हैं। एवं नही हमारे माता पिता हमको बता गये हैं। किन्तु उस समय को अवगाहन कीजिये जो की हमारा अपना है और

हम एक नन्ही सी मूर्ति लेकर माता के आश्रय से निकल जगत के जलवायु में पांव रखते हैं उस समय की अवस्थायें कैसी आनन्द वर्धक हैं इस पांच तत्त्व के छोटे से पुतले की चेष्टायें किस प्रकार की विचित्र होती हैं हम करामातों एवं सिद्धियों की तलाश में दुनियां भर की कबरों और श्मशानों का अवगाहन कर डालते हैं परन्तु इस नन्हे से पुतले के अन्दर ईश्वर ने कितनी करामातें भरदी हैं इसपर बहुत कम विचार करतेहैं सज्जनों ! यही छोटा सा पुतला पृथिवी के तख़्ते को नीचे ऊपर कर देनेकी शक्ति रखता है। इसी में ईश्वरीयचित्रों का दृश्य है। यह सब उस परमात्मा की अपार दया का चिन्ह हैं वट वृक्ष के एक छोटे से बीजपर ध्यान दो वह कितना छोटा एवं सूक्ष्म है। उसको एक ज़रासी च्यूंटी किस आनन्द से मुखमें रक्खे सटर२ जारही है। परन्तु उसे क्या मालूम कि यहीबीज जो आज मेरे ज़रा से मुख में प्रतीत भी नहीं होता एक दिन समय

पा कर एवं पृथिवी में गिरकर जल वायु के सा-
हाय से एकर पत्ति निकालता हुवा इतना महान्
वृक्ष बनेगा कि मेरे जैसी असंख्यों च्यूंटियों का
ही निवास स्थान नहीं बनेगा प्रत्युत बड़ेर पक्षी
और भयङ्कर हस्ति भी मध्यान्ह समय की धूप
से सताये हुवे इसके नीचे शान्ति पायेंगे एवं लंबों
मार्ग का दुःसह्य व्यथा और गर्मी के झुलसे हुवे
आत्मा इसके नीचे बैठकर उस दैवी ठण्डक से
अपने हृदय को शान्त और आह्लादित करतेहुवे
सच्चे हृदय से अपने स्वामी परमात्मा का धन्यवाद
रूप यश गायन करेंगे ॥

यह ईश्वरीय रचना के अनूठे ढङ्ग हैं। जिन
को प्रेमाविष्ट जीव ही समझ सकते हैं, महान् से
महान् वैज्ञानिक मनुष्य भी इनको देख चकित
होजाता है इन्हीं विचित्र लीलाओं का अनुभव
करते मुनिगण कहिते हैं कि "वह सर्व व्यापी.
प्रत्येक स्थान में देदीप्यमान है हमको कोई ऐसा
स्थान प्रतीत नहीं होता कि जहां उसकी विचित्र
रचनायें अपना चमत्कार न दिखा रही हों ॥

हम नाना मतों में फँसकर अपने अपने निश्चय के अनुसार उसके पवित्र नाम को नाना ढाञ्चों में ढाल सकते हैं और ढालते हैं एवं संसार के किन्हीं विशेष पदार्थों की लिप्सा तथा लालचों से उस के पवित्र और सच्चे नाम को नाना घृणित ढङ्गों से वर्त्तावमें ला सकते हैं इसी प्रकार से पापाविष्ट होकर मन्द से मन्द व्यवहारों चेष्टाओं की पद्य पूर्त्ति करने में उसके पवित्र नाम को कलङ्कित करनेकी चेष्टा द्वारा अपनी निर्दयता एवं कृतघ्नता का परिचय दे रहे हैं परन्तु उसकी अपनी सत्ता दयालुता एवं पवित्रता में किसी प्रकार की कोई क्षति नहीं कर सकते। वह निर्विकार और निःकलङ्क है हम अपने आचारों एवं व्यवहारों से कैसा ही क्यों न बनाने का यत्न करें परन्तु उस के प्रकार आदि में किसी प्रकार का भेद आजाना असम्भव है। दुःख और अत्यन्त कष्टके समय हमारा आत्मा प्रेमभरे भावों से उसे याद करता है। उसके पवित्र और अविनाशी प्रकाश को एकर राशी संसार के संपूर्ण प्रकाशों की जननी

है वह संसार के धोखों छलों कपटों को जिनके साथ कि हम उसके सुन्दर नाम को लगाकर झुठलाने की चेष्टा करते हैं पाश पाश करके पार हो जाती हैं उसका प्रकाश महान् प्रकाश है जहां सूर्य की चमक मध्यम पड़ जाती हैं चान्द और तारे वहां अपनी डींग नहीं मार सकते बिजली की दमक एवं कड़कड़ाहट का वहां कुछ प्रभाव नहीं पड़ सकता तो संसार की अग्नि बेचारी की क्या सत्ता है कि वहां दम मार सके। उसके आधार पर सम्पूर्ण जगत की सत्ता है। उसके आधार पर हम सब जीते हैं। उसी के प्रकाश से लाभ उठाकर हमारा विवेक हमारे लिये अनन्य साहाय का दम भरता है। जब कभी उस की विलक्षण शक्तियों का प्रभाव हमारे सामने आता है हम उसका सामना नहीं कर सकते।

जितने भी प्राकृत पदार्थ हमारे चारों ओर घूम रहे हैं सब हमारे इशारे के आधीन हैं और सांसारिक व्यवहारों के साधन हैं यह हमारा सब काम करने को उद्यत हैं परन्तु हम उस परमात्मा

के विना इनसे कुछ लाभ नहीं उठा सकते यह सब उसी के आधार पर संभव है जिसने कि इन को हमारे सन्मुख रक्खा है। हम को प्रत्येक समय में अपने कर्त्तव्य की तलाश एवं खोजना है परन्तु हम परमात्मा को छोड़ कर उसकी प्राप्ति अन्यत्र नहीं कर सकते वह हमारे कर्त्तव्यों की जन्मभूमि हैं। हम पीछे कहि चुके हैं कि अपने कर्त्तव्य की तलाश उसके शासन में करनी चाहिये यह सच है कि इसकी प्राप्ति उसीसे होगी उसीसे हमको खोज मिल सकता है। उसको छोड़ हम किसी भी स्थान में क्यों न जायें अवश्य अन्धकार मय गढ़े में गिरना होगा हमें दुःख कष्ट एवँ आपत्ति के समय में यदि किसी प्रकार की ढारस मिल सकती है तो वह केवल उसका पवित्र नाम है जिससे कि हमारे दुःखी हृदयको शान्ति मिलती है, यदि हमारे आत्मा पर किसी पवित्र एवँ दयालु शक्ति का राज्य नहोता तो वह अत्यन्त कष्ट के समय उसको कभी भी याद न करता क्या कोई बतला सकता है कि यदि परमात्मा नहीं है

तो दूसरी हमारे पास कौनसी ऐसी कसौटी है जिससे कि हम संसार में धर्म्माधर्म्म एवँ पुण्यपाप अथवा भलाई बुराई की परीक्षा कर सकते हैं ?

उपनिषदों में लिखा है कि "न वह आत्मा बातों से मिलता है नहीं अत्यन्त चातुर्य्य से ही जाना जाता है किन्तु यदि वह जानाजाता है तो केवल सत्य और यमादि साधनों से" हमने पीछे कहा है कि युक्तियों एवं चालाकियों से हम किसी को निरुत्तर करसकते हैं परन्तु उसकी प्राप्ति इनसे नहीं होसकती। उपनिषदों के कथनानुसार यमादि साधन उसके पाने की कुञ्जी हैं।

वह सर्व व्यापक है सब स्थानों में विद्यमान है खोजनेवाले उसको जानते एवं पाते हैं वे जहां भी प्रेमभरी दृष्टि डालते हैं उन्हें उसका प्रकाश दिखाई देजाता है। प्रेम और विश्वास में एक ऐसी शक्ति है कि वह चाहत वस्तु को अपनी ओर खींचलेता है। हमारा सबका धर्म्म है कि हम उससे प्रेमकरें वह हमपर दया करेंगे क्योंकि वह दयालु हैं। हमें चाहिये कि हम अपनी काम-

नायें विनीत भावसे उसके सामने प्रगट करें वह पूर्ण करनेवाले हैं वह हमारे पिता हैं माता हैं। जिस प्रकार एक नन्हासा बच्चा अपनी पियारी माता की गोदमें बैठाहुवा प्रेमभरी दृष्टिसे अपनी प्यारी माता की ओर देखता है तो माता प्रेमाविष्ट होती हुई गद् गद् प्रसन्न होजाती है और उसकी बलायें लेनेको तय्यार होजाती है, माताकी एक एक नस प्रफुल्लित होजाती है इसी प्रकार जब हम अपनी सच्ची और सदैवी माता की गोद में बैठकर प्रेमाविष्ट भीतरी दृष्टि उसकी ओर करेंगे वह सच मुच प्रसन्न हो जायगी और हमारे सब कष्ट दूर होंगे, इस लिये हम को अपने प्रत्येक काम में उस के पवित्र नाम का तिलक करना चाहिये। इस से हमारे भीतर उसका प्रेम बढ़ेगा- और मन्द एवं नीच संस्कार भाग जायेंगे- जिससे कि न केवल हमारा आत्मा ही शान्त होगा किन्तु नाना प्रकार के दुष्कर्मों से बचता हुवा अपने आपको अनेक कष्टों से बचा सकेगा। हमें उचित है कि हम उसका भय भी करें।

उस का भय करना मानो अपने आप पर दया करना है। एक पक्षी को यदि इस बात का ज्ञान होजाऐ कि जिस दाने पर मैं जारहा हूं उस पर एक जाल भी लग रहा है, जो कि मेरे फुन्सानेका हेतु है जिससे कि मेरा फिर कल्याण असंभव है तो वह कभी भी उस दाने पर जाने की चेष्टा नहीं करता और नहीं करेगा। चाहे भूख उसे कितना ही क्यों न सताये परन्तु वह उस दाने पर न जायेगा क्योंकि उसे भय है कि कदाचित् मैं फन्स जाऊं। इसी प्रकार जो मनुष्य ईश्वर से भय करता है, वह कभी भी किसी प्रकार के दुष्कार्यों में न फंसेगा। क्यों कि वह जानता है कि परमात्मा हमारे शुभाशुभ कर्मों के फल प्रदाता हैं। परमात्मा का भय ही हम को पापों दुराचारों एवं दुर्व्यसनों से मुक्त कर सकता है—यह एक शासन है जिस के अनुसार चलते हुये कि हम उपरोक्त वृत्तियों के शिकार नहीं होते। जिस से हम अपने जीवन को वास्तविक पवित्र जीवन बना सकते हैं इस लिये

आओ हम सब मिलकर पवित्र हृदय से उस पिता परमात्मा का अपने प्रेम भरे हृदय से जब २ कि हमें समय हो यश गायन करें । और विनीत भाव से उस के आगे प्रार्थना करें कि हे परमात्मन् ! हमको आशीर्वाद दो कि हम आप की पवित्र आज्ञा का पालन करते हुवे अपने जीवन को पवित्र शान्त और आनन्द वर्द्धक एवं देश जाति के लिये लाभ दायक बना सकें ॥ ओम् ॥

जीवन ।

जो मनुष्य अपने जीवन में सत्यवादी एवं सदाचारी है स्वर्ग की कुञ्जी उसके पास है" राम-चंद्रजी ॥

' जिसको संसार दुःखी नहीं करसकेता जिस से संसार को किसी प्रकार का कष्ट नहीं पहुंचता जो दुःख एवं सुख में तथा भय आदि में स्वतंत्र है वह मनुष्य है जीवित है और ईश्वर का प्यारा है" भगवान् कृष्ण जी ॥

"मनुष्य उसको समझना चाहिये कि जो विचार और चिन्तन में निमग्न रहे अपने समान सबकी भलाई बुराई सुख दुःख एवं हानि लाभ को समझे" स्वामी दयानन्द जी ॥

यह तीन शिखिर हैं जिन पर चढ़ना हमारे सबके लिये श्रेय है। इन से हम जीवित रहि सकतेहैं और अपने आपको सुखका पूर्ण अधिकारी बना सकते हैं। मनुष्य की ओकाति होने से कोई

अपने आपको मनुष्य नहीं कहि सकता और नहीं उसको मनुष्य कहा जायगा कि जो सोता जागता एवँ लड़ता झगड़ता अधिक हो। किन्तु मनुष्य होनेके लिये आवश्यक है कि उसके भीतर दैवी सम्पति से भरे हुवे मानुषी गुण विद्यमान् हों महात्मा भर्तरी के सिद्धान्त में मानुषी गुणोंसे शून्य पशु माना जाता है। अर्थात् जिसके भीतर किसी प्रकार का तप विद्या शिल पदान शीलआदि गुणों में से एक भी नहीं वह पृथिवी पर भार रूप हैं। वास्तव में इनका न होना एक प्रकार का अवगुण है जो कि आत्मिक विचारों के न होने से उत्पन्न होता है।

सँसार के चिकने चोपड़े पदार्थों पर मोहित हो अपने आपको उनके हाथ बेचकर जीवन को मट्टीमें मिलादेना जीवनका चिन्ह नहीं है किन्तु मृत्यु का चिन्ह है। माना कि ऐसे मनुष्य मुक्ति की इच्छा न करें माना कि उन्हें इससे अधिक सुख की प्रतीति कहीं नहीं होती परन्तु फिरभी यह जीवन के चिन्ह नहीं कहे जा सकते। यदि

ऐसे ही जीवन का चिन्ह होते तो रावण जैसे इन को रखते हुवे दुःखी नहोते एवँ राम जैसे इनको रखते हुवे विघ्नी न होते ।

पशु सदैव एक छोटी सी खूंटी के साथ बन्धे हुवे अपनी आसपास की दशाओं के आधीन होते हैं क्योंकि उनके लिये ईश्वरीय नियम हीइसी प्रकार से विस्तृत होता है। इसीलिये वे अपनी स्वभाविक शक्तियों के विशेष प्रभाव का विस्तार नहीं कर सकते हैं। वे अपने आसपास के साथ पदार्थों को सिसकती हुई दृष्टि से देखते हैं परन्तु अपने वर्ताव में नहीं ला सकते क्योंकि यह उन की शक्ति से वाहिर है वह स्वतँत्र नहीं हैं अतएव न तो वे उन्हें अपने पास ला सकते हैं नहीं उन के पास स्वयँ जा सकते हैं। पशु शब्द जिस धातु से बनाया जाता है उसका अर्थ भी बन्धा जाना या बन्धन में आना ही हैं अतएव स्वतँत्रता के अभाव का नाम ही पशुपन है जो स्वतँत्र है वह मनुष्य जो परतँत्र वह पशु। आपने बन्दीखाने के कैदियों को देखाहोगा वे बन्दीखाने से बाहिर

आते जाते भी देखे होंगे उनकी दशा भी इसी के समीप२ होती है।

इसी प्रकार दूसरी मनुष्य मण्डली में भी जो २ मनुष्य अथवा मण्डली छोटे छोटे संस्कारों रूपी खूटियों से बन्धी हुई हैं और उन को संसार के चिकने चोपड़े पदार्थों लालचों धन्धों क्षुद्र संस्कारों ने ऐसा जकड़ दिया है कि वह इतस्ततः चेष्टा नहीं कर सकती प्रत्युत बुरी दशामें एवं उसी अवस्था में बन्धे रहिने को ही सुख एवं कल्याण समझती है तो वहां पूर्ण निश्चय करलेना चाहिये कि वह अपने आपको मानुषी मण्डली कहिने का अधिकार नहीं रखती है। महात्मा गौतम बुद्धका कथन है कि दुर्मति मनुष्य पिञ्जरे में पड़े पक्षी के समान वासनाओं के सेवक होजाने से अज्ञानान्धकार पशुत्वसे प्रथक नहीं होसकते,, ॥

इस प्रकार की मनुष्य मण्डली जिसका कि हमने ऊपर वर्णन किया है महात्मा भर्तृहरि के कथना नुसार निःसन्देह लोहार की धमनी के

समान श्वासलेती भी निश्श्वास एवं मृत्युगत है
एसी मण्डली के मनुष्य गो वैल घोड़े आदि के
समान एक खूटी से वन्धे हुवे नाना कष्टों का
अवगाहन तो कर जायेंगे भूख से मरना स्वीकार
करेंगे प्यास से भी पीड़ित होंगे अपने सह वासियों
की सम्पत्ति छीन लेने का उद्योग करेंगे परन्तु
पुरुषार्थ हीन अपने शरीर से किञ्चिन्मात्र भी
चेष्टा न करते हुवे अधोगति का अवलम्बन श्रेय
स्कर समझेंगे।

विरुद्ध इस के मनुष्य इस प्रकार की खुंटियों
को तोड़ फोड़ एवं छिन्न भिन्न करके अपने विवेक
से पूर्ण शिक्षा लेता तथा विचार शक्तियों को उ-
न्नत करता हुआ स्वतन्त्रा पूर्वक पृथिवी का भ्रमण
करता है। एसा मनुष्य समीप वर्त्ति पदार्थों को
अपने विज्ञान एवं विचारमय शक्तियों से अपना
स्थायी सेवक बनाकर प्रकृति के एक २ अणु को
सेवक बनालेता है। आत्मिक पूंजी के महत्त्वको
उन्नत करता हुवा सहस्रों जीवों के जीवन का
हेतु भूत होजाता है। उसे संसार का कोई कष्ट

नहीं देसकता कोई विघ्न बाधक नहीं होसकता प्रकृति का एक २ अणु उस के सामने कृताञ्जलि खड़ा रहता है और उसकी आज्ञा की प्रतीक्षा करता रहता है क्योंकि वह भला मनुष्य उनका स्वामी है एवं उनके जन्म को सफल करने वाला है। उनके उद्देश्य की पूर्त्ति उसी ने की है।

वह दैवी सम्पत्ति वाला मनुष्य आनन्द और प्रसन्नता के साथ उन से अठखेलियां लेता हुवा अपने जीवनको सफल एवं पवित्र बनाता चलाजाता है। ऐसे मनुष्य के सामने यदि कोई सांसारिक विघ्न आभी पड़ता है तो उस के उद्योग एवं दृढ़ पुरुषार्थ मय ज्वाला में भस्म होजाता है। एसे मनुष्य सच मुच मनुष्य होते हैं नहीं २ किन्तु देवताहोतेहैं इसी प्रकृतिके मनुष्यों के लिये शास्त्र में देवता शब्द चुना गया है। प्रत्यक्ष में मनुष्य मनुष्य की धूम मचाने वालों को इस प्रकार के जीवनों पर दृष्टि देनी चाहिये॥

हमारी प्रकृति विलक्षण है हमारे विचार निराले ढङ्ग के हैं हमारी बुद्धियें विचित्र दशाओं

के आश्रम हैं इसमें से ८० फ़ी सैकड़ा यह भी नहीं जानते कि रेल किन २ पदार्थों से चलती है।

अभी तक विद्युतका शरीरधारी देवता विशेष ही जाने हुवे हैं ९९ फ़ी सैकड़ा को भी ज्ञात नहीं कि सूर्य्य की राशियें क्या २ काम करती हैं तो फिर हम अपने आपको किस मुखसे मनुष्य कहिने के अधिकारी बन गये हैं।

जीवन का चिन्ह फैलना एवं फैलाना हैं। और मृत्यु का चिन्ह सुकड़ना एवं सुकोड़ना है। अत एव जहां बुद्धिबल संस्कारों का विस्तार होगा वहां पर ही जीवन के चिन्ह विद्यमान होंगे और जहां पर उपरोक्त पदार्थों का विस्तार के स्थान सङ्कोच पाया जायेगा समझ लोकि वहां मृत्यु ने स्थान बना लिया।

सुख दुःख आनन्द चिन्ता स्वाधीनता पराधीनता एवं भूख पियास संसार में सब नियम पूर्वक नियत हैं परन्तु हमारे लिये एक समय ऐसा भी है जिसमें कि हमारा प्रवेश होना हमारे अपने आधीन है।

हम जिस प्रकार चाहें उसे अपने वर्त्ताव में ला सकते हैं। वास्तव में वही समय इस प्रकार का है कि हम उसमें अपने आपको सच मुच मनुष्य बनासकें जब हम उस समय का अवगाहन कर लेंगे तो हमरा पूर्ण अधिकार हो जायेगा कि हम अपने आपको मनुष्य मण्डली में गिनसकें।

हम सृष्टिके उन सँपूर्ण पदर्थोंके स्वामी हैं जो कि दिन रात हमारे चारों ओर घूमते रहिते हैं क्योंकि हम अपने संस्कारों से किसी के आधीन नहीं हैं। इस लिये हमारा धर्म्म यही है। कि हम उन पदार्थों का सच्चे एवं पवित्र हृदय से एसा प्रयोग करें कि वे सब हमारे लिये लाभ दायक बनें

यदि हमारे भाव पवित्र हैं उनमें किसी प्रकार की क्षति नहीं है यदि हमारे संस्कार उच्च हैं यदि हमारी दृष्टिमें प्रेमने स्थान कर लिया है यदि हमारे उद्देश्य पवित्र एवं सबके लिये लाभ दायक हैं यदि हमारे अन्दर आत्मा वा विवेक का कुछ भी सत्कार है तो सच मुच हम जो चाहेंगे मिलेगा जो चाहेंगे बन जाँयगे किसी प्रकार का

कोई विघ्न हमारे लिये बाधक न होगा हमारी सब भावनायें पूर्ण होंगी यह ईश्वरीय नियम है इसी का नाम प्रकृति धर्म्म अथवा Nature है।

संसार की उत्पत्ति कब हुई ? किस प्रकार हुई क्यों हुई ? किसने की ? किससे की ? संसार क्या है ? कितना है ? जीव कहां से आया ? क्या है ? क्यों आया ? इत्यादि अनेक प्रश्न हैं जो हमारे मत वादों में प्रत्येक समय उपस्थित रहते हैं दिनों दिन इनकी उन्नति है इन्होंने कई नवीन मत खड़े कर दिये कई मुनियों के शिर शरीर से प्रथक कर दिये परन्तु इनकी निवृत्ति न होने पाई हमारा अभिप्राय यह नहीं है और नहीं होगा कि इस प्रकार के प्रश्न न होने चाहियें अथवा इनके विचार करना योग्य न थे नहीं २ यही प्रश्न हमारी दार्शनिक शक्तियों एवं विचार शक्तियों का विकास करने वाले हैं जिन जातियों में इस प्रकार के सूक्ष्म विचार उत्पन्न नहीं हुये वे विनाश होगईं हमारी जातिमें यदि कोई गौरव है तो वह केवल यही सूक्ष्म विचार हैं। किन्तु इस समय हमारा

अभिप्राय यह है कि हमें अपने आपको पूर्व इस योग्य बनाना चाहिये कि हम इन प्रश्नों को हल करसकें हम अपने जीवन को जीवन की दशा में लेजाने का उद्योग करें फिर इस प्रकार के प्रश्न स्वयं सिद्धिकी अवस्था में सामने उपस्थित हो जाया करेंगे। उपनिषदों में लिखा है कि हमारे मुनिजन इस प्रकार के प्रश्नों पर विचार करते समय सभायें नहीं किया करते थे प्रत्युत योगाव-स्था में लीन हो जाते थे स्वयं सब प्रश्न हलहो जाते थे। हमारा अभिप्राय यह भी नहीं है कि हमें मत सम्बन्धी रश्मियों को तोड़ देना चाहिये कदापि नहीं हमइसके नितान्त विरोधी हैं प्रत्युत भाव यह है कि हमें क्षुद्र २ सँस्कारों विचार श-क्तियों को सूखी मगज़ पच्ची में न व्यय करके सत्य मार्ग के अन्वेषण में लगाना चाहिये। और अपने पवित्र समय एवं जीवन को विशेष नियम के अन्दर रखते हुवे इसको इस योग्य बनावें किवह अपनी चेष्टाओं जीवन व्यवहारों से ही सब प्रश्न हल करता जावे। इससे जगत् की कोई अयोग्य

शक्ति इसको दबा न सकेगी हम स्वच्छन्दता पूर्वक सब व्यवहार कर सकेंगे ।

यह कहना एवं कहदेना अत्यन्त सुगम है कि हम मनुष्य हैं अमुक काम को हम करलेंगे उसको करना हमारे सन्मुख क्या है परन्तु यदि कठिन है तो यह है कि उस को कर दिखाया जाये हम क्या हैं ? और जगत् में क्यों आये ? यह प्रश्न ऐसे नहीं कि दो दूनी चार कहदेने से पूर्ण हो जायेंगे वास्तव में यदि कोई दुःसाध्य प्रश्न है तो यही है इसके समझने के लिये बहुत काल की आवश्यकता है सारे जीवन की आलोचना करनी होगी तो जाकर यह समझ में आवेगा । इस प्रश्न का सम्बन्ध बाह्य पदार्थों से नहीं किन्तु आत्मासे है।जगत् को विषयों एशोंका चमन स्थान मानने वाले इसका उत्तर नहीं देसकते हमारा जीवन एक प्रकार की संग्राम भूमि है अत एव हमारा धर्म्म है कि हम इस संग्राम भूमि में कुछ न कुछ हाथ पांव मारते ही दिखाई देवें ।

और एक सच्चे वीर के समान इस में प्रवेश

करें एवम् उन शत्रुवों के साथ जो कि हमारी जीवन यात्रा में विघ्न डालने वाले हैं युद्ध करें।

संग्राम भूमि में वीर वही माना जाता है जो शत्रु का मुख देखकर सिंह के समान सावधान हो जाता है। न कि भयभीत होकर झाड़ियों में छिपने का यत्न करता है। शूरवीर सिपाही पीछे को पांव हटाना अपनी मानहानी समझता है ज्यों ज्यों शत्रु उसपर अधिक आक्रमण करते हैं त्यों त्यों उसका आत्मिकबल उन्नति करताजाता है। यद्यपि शत्रुवों के तीरों से उसका शरीर चलनी होगया है परन्तु इसकी परवाह न करता हुवा आगे को ही पाँव जमाता चला जाता है

प्रिय सज्जनों! जो योधा इसप्रकार रणभूमि में गर्जता है उसीकी विजय होती है वही सत्कार दृष्टि से देखा जाता है विजय का डँका उसी के पवित्र नाम पर बजाया जाता है यही दशा जीवन यात्रा की है इसकी घटनायें विचित्र घटनायें हैं। और यदि इनकी ओर ध्यान न दिया गया तो घटनाओं से दुर्घटनायें बन जायेंगीं।

इसलिये धर्म्म है कि हम इस रण भूमि में पांव रखकर अपने आपको सावधानी से आगे चलावें ऐसा नहो कि कहीं जरा सा पांव फिसला तो उड़ गये मारे गये फिर निशान तक दिखाई न देगा। जीवन यात्रा में एक२ पांव पर लखों शत्रु मानों घेर. बनाये मार्ग रोके खड़े हैं। और किसी न किसी ढङ्ग से चोट लगाये बिना न रहेंगे इनका सामना करना ही हमारे लिये श्रेय होगा अन्यथा इनकी छोटी सी चोट भी हमको अपने उद्देश्य से कोसों दूर लेजा फेंकेगी। महात्मा बुद्ध का कथन है कि "बदी को हलकी और छोटी सी वस्तु न समझो वह बढ़ती२ इतनी बढ़ जायेगी कि तुम उसके नीचे दब जाओगे और फिर उठना मुहाल होगा" स्वामी दयानन्दका आशय भी इस विषय में इसी के समीप समीप ही है।

हम इस संग्राम भूमि में शत्रुवों का विध्वन्स करने आये हैं हम उनपर विजय पानेके लिये आये हैं नकि परस्पर लड़ मरने के लिये याद रक्खो जिस संग्राम भूमि में सिपाही शत्रुवों के साथ युद्ध

न करके एवं उनका सामना न करके परस्पर संग्राम करने लग जाया करते हैं उनका नाश होजाया करताहै वह कभी भी जीवित नहीं रहि सकते यह प्राकृत नियम है इसको संसार की शक्ति विभागकर नहीं सकती जगत के इतिहास में आप को कोई एसा दृष्टान्त नहीं मिलेगा क्या कोई एसी जाति है जिसने परस्पर विरोध करके अपने आपको जीवित रक्खा हो क्या आगे को रहिने की संभावना हो सकती है ! कदापि नहीं । इतिहास हमको उच्चस्वर से बतलाता है कि जिसने जाति अपने शत्रुवोंका सामना न करके परस्परका सामना किया नाश होगयी आज उसका निशान छोड़ नाम भी हम भूल गये देश एवं जाति के विध्वंस की मूल प्रकृति यदि कोई है तो वह यही परस्पर का वैर भाव है । किसी जाति शत्रुका इतना भय नहीं होता जितना कि उसे परस्पर के देश वा जाति विध्वंसका विरोधी समुदाय से होता है। जहां २ जिस २ भी जाति का नाश हुवा है वहां २ इसी समुदाय की दया से हुवा है ।

क्या हमारी परस्पर की घृणा इस लिये तो नहीं कि हम यहाँ से कुछ लाभ उठावें ? यदि इसी लिये है तो यह आकाश के फूल हैं जिनका मिलना असंभव है हम पीछे लिख आये हैं कि एक खूंटी से बन्धी हुई मनुष्य मण्डली यदि परस्पर का चारा घास ही छीनना चाहती है तो वह मनुष्य मण्डली नहीं प्रत्युत पशुमण्डली कहिना चाहिये इसलिये हमे योग्य यही है कि इन ख पुष्पों को छोड़ सच्चे पुष्पों को चुनने की चेष्टा करें जिससे कि हमें लाभ भी हो।

नाना कामों के करने के लिये नाना मनुष्यों की ही आवश्यकता होती है । संपूर्ण जगत् के मनुष्य एक ही काम के लिये नहीं उत्पन्न किये गये । यदि एक बगीचे में एक ही प्रकार के वृक्ष होते तो उसे कोई भी पसन्द न करता उद्यान या बगीचा वही शोभायमान होता है जिस में नाना प्रकार के वृक्ष फल फूल लग रहे हों । वही स्तवक (गुलदस्ता) शोभा पाता है जिस में नाना प्रकार के पुष्प लग रहे हों यदि एक ही प्रकार के

फूल होंगे तो बनाने वाले की मूर्खता प्रगट की जायगी। यही अवस्था हमारे मानुषी जीवनकी है। कभी मत कहो कि परमात्मा ने हम को न्यूनावस्था में उत्पन्न किया। ऐसा क्यों न किया वैसा क्यों न किया। जगत् का रचने वाला अज्ञानी एवं मूर्ख न था। उसने जिस योग्य जिस २ को समझा उसी उसी अवस्था में उस २ की रचना की है। इन बातों को हम न समझ सकें परन्तु वह उत्तमता से जानता है। माली जानता है कि कौनसा वृक्ष किस स्थान में शोभा पायेगा! उसको परीक्षा है वह बुद्धिमान् है। माली का उचित स्थान में लगाया गया वृक्ष कैसी उन्नति करता है परन्तु हम हैं कि उचितावस्था में रचे गये भी शोक करते हैं यह हमारी भूल है। हमें उचित यही है कि हम अपनी अवस्था पर शोक न प्रगट करके आगे पांव रखने का यत्न करें। हमें परमात्मा का धन्यवाद करना चाहिये कि उस ने हम को नाना प्रकार में रचा। अन्यथा हम कभी भी परस्पर प्रीति न रख सकते परस्पर

स्नेह का कारण ही यही है कि हम नानारूपमें हैं। हम को इस अवस्था में भी प्रसन्न वदन रहिना चाहिये और यत्न करना चाहिये कि इस अवस्था से पूर्ण लाभ उठाया जाये। और इसी को एक आदर्शमय आदर्श बनाया जाये।

हमने पीछे वर्णन किया है कि हमारा जीवन एक प्रकार की संग्राम भूमि है अतएव रणभूमि के वीरों के समान हमें अपने २ स्थान पर दृढ़ एवं निश्चल रहिना चाहिये। और अपने शत्रुओं से युद्ध करना चाहिये शत्रुवों से हमारा अभिप्राय उन कामों वा व्यक्तियों से है क्यों कि उनको हमारे जीवनोद्देश्यों से च्युत करते हैं। इस में सन्देह नहीं कि इन कामों में पुष्कल विघ्न मार्गावरोधन करते हैं परन्तु हम को साथ २ उन का भी अन्त्येष्टि करते जाना चाहिये। यदि हम अपनी सत्ता पर विश्वास करके दृढ़ संकल्प करेंगे तो उनकी शक्ति नहीं कि हमारे काम में हस्ताक्षेप करसकें। सांसारिक विघ्न उन लोगों को ही प्रायः सताया करते हैं जिन्हें अपने आत्मा पर

विश्वास नहीं होता। आत्मिक विश्वासियों की शक्ति उन्नत होती है। इन के होते हुवे हम को भी अवसर मिलेगा कि हम अपनी शक्तियों की जांच एवं परीक्षा कर सकें। वास्तव में एक शूर-वीर सिपाही की परीक्षा होती भी कहां है? रणभूमि में !! जो सिपाही रण भूमि से भय करता है उस की परीक्षा कहां हो सकती है।

हम पृथिवी एवं नालियों के कीड़े अथवा ढाक के मकौड़े नहीं हैं कि दो चार दिन इधर उधर रेंग कर मर जायें। नहीं हम गधे हैं, कि कुम्हारोंका बोझ उठाकर मरजायें। किन्तु हम दैवी सम्पत्ति सहित मानवी शरीर एवम् एक महान् चेतन शक्ति (जो कि कभी २ पृथिवी के टुकड़े को उलटा पुलटा करने में भी समर्थ है) के स्वामी हैं। हम उस चेतन शक्ति के स्वामी एवं अधिपति हैं जिससे कि जगत् की सम्पूर्ण शक्तियें कांपती हैं। जिन के सामने च्यूंटी से लेकर हस्ति पर्यन्त भय भीत होते हैं। अर्जुन सा जातीय गौरव रामचन्द्रजी पितृभक्ति अभी तक विद्य-

मान है। शङ्कर रामकृष्ण क्राईस्ट आदि के शरीर इन्हीं परमाणुओं से बने थे दयानन्द आकाश से नहीं उतरा था, गोविन्दसिंह जी का शरीर भी इसी जल वायु में पोषित हुआ था॥

सज्जनों हम एक प्रकाश मय शक्ति के अधिष्ठाता हैं जोकि सम्पूर्ण उन्नतियों सुखों आनन्दों का भण्डार है। यह जगत् की आपत्तियें क्लेश एवं निराशायें जिनको कि हम देख रहे हैं वास्तव में हमारे लिये नहीं उत्पन्न की गयीं यदि हम इन को अपने लिये मानते हैं तो हमारी भूल है। हां यदि इनकी कुछ सत्ता हमारे लिये प्रतीति का भाजन बन रही है तो केवल हम ही उसमें कारण हैं। ईश्वर ने हम सबको स्वतंत्र एवं पवित्र भावों से पूरित उत्पन्न किया है जो कुछ रस्सियें अपनी पावों में डाली गयी हैं वे सब हमारी अपनी ओर से डाली गयी हैं। और इनका नाश करके अपने आपको आनन्द भूमि में लेजाना भी हमारे अपने आधीन है। हमारे भीतरी भावोंको जगत् की कोई कुल्हाड़ी काट नहीं

सकती। हम चेतन हैं हमारे भीतर सब शक्तियें विद्यमान् हैं। हम अपनी अवस्था के ज़िम्मेवार अथवा उत्तर दाता आपहैं। हम जोर काम करेंगे सब का फल अवश्य भोगेंगे, आजसे दो या चार सौ वर्ष पीछे कोई यह न जानेगा कि हम क्या थे अथवा हमारे हाथ पांव कैसे थे प्रत्युत जगत् यह याद करेगा हमने कितने भले काम किये कितना जीवन सदा चार एवं पवित्रता से व्यतीत किया। हम अपनी सन्तान के लिये यदि कुछ दायाद छोड़ मरेंगे तो वह केवल हमारे कर्त्तव्य कर्म्म होंगे जगत् के शेष पदार्थ अनित्य तत्कालिक हैं परन्तु नेककमाई जितनीभी हम करजायेंगे स्थायी होगी। नालियोंके कीड़ोंकी मृत्यु मरना हमारा धर्म्म नहीं है नहीं हम जगत् में इसलिये भेजेगये हैं

सज्जनों जगत् एक प्रकार का उद्यान(बग़ीचा) है जिसमें नाना प्रकार के वृक्ष शोभायमान् हो रहे हैं। हमें सबको उत्तमता से इसकी सैर करनी चाहिये और वास्तवमें हम इसलिये बनायेभीगये हैं अतएव हमारा कर्त्तव्य है कि हमइसके कारोंसे

प्रथक् रहि कर दिल खोल कर इसमें भ्रमण करें। और इसके अन्दर पत्ते२ फूल२ पर गहिरी दृष्टि डालें और इसमें से अपने एवँ आने वाली अपनी शुभ सन्तान के लिये नेक नतीजों का संग्रह करें हमें इस उद्यान में से सब कुछ निकालने का अधिकार दिया गया है। हम इसके उत्तम वा नीच सब प्रकार के फलों के भागी हैं। हमें यह कभी न सोचना चाहिये कि यह हमारे लिये दुःख दायी होगा नहीं२ किन्तु इसका दुःख दायक वा सुखप्रद बनाना हमारे अपने आधीन है महात्मा मेज़ीनी का कथन है कि "पृथिवी हमारा कारखाना है इस लिये हमें उचित नहीं कि हम इस को नीचगिनें किन्तु उचित है कि हम इसको पवित्र बनाने की चेष्टा करें" सज्जनो हम लोग परिश्रम के सेवक हैं और कदाचित इसी लिये निर्धन एवं सुख से कोसों दूर हैं यद्यपि इसका उत्पन्न करना हमारे आधीनहै हमें शिकायत है कि अन्य लोग हमारे साथ उत्तम वर्त्ताव नहीं करते यह हमारी भूल है। हमें सबको आत्मिक सहायक होने की

आवश्यकताहै।जब कि प्रकृतिNatureruleनेहम सब को इस योग्य कर दिया है कि हम उन कर्त्तव्यों का स्वतंत्रता पूर्वक अनुष्ठान करें जो कि हमारे संसार में पांव रखते ही हमारे साथ भेजेगये हैं तो मानों उसने अपना कर्त्तव्य पालन कर दिया अब हमारी अपनी क्षतिहै कि हम उनको पूर्ण प्रकार से अपने बर्त्ताव में नहीं लाते हैं हां यदि कोई मनुष्य अपनी किसी अवस्था विशेष के कारण उसे बर्त्ताव में नहीं लातातो उसे उचित यही है कि अपनी अवस्था में मग्न रहि कर किसी पर आक्षेप मत लगाये।

जिस दृष्टि से हम किसी को देखेंगे उसी दृष्टि से वह हमारी ओर ताकेगा यह प्राकृत नियम है। हमारी अपनी अवस्था इसी प्रकार की है। क्या हमारेमें कोई एसा है जो अपनी हानी करके दूसरे को लाभ पहूंचा सके ? उत्तर में विन्दु के विना और कुछ नहीं यह क्यों? केवल इसलिये कि एक दूसरे पर विश्वास नहीं विश्वास क्यों नहीं इस लिये कि उसका घात किया जाताहै जब एक

धनी निर्धनों के साथ इसप्रार का वर्त्ताव करता है कि उसकी स्वार्थ सिद्धी हो तो प्रत्येक मनुष्य प्रत्यक मनुष्य को इसी दृष्टि से देखे एवं वर्त्ताव करेगा प्रत्येक मनुष्यको अपने ही लाभ काध्यान होगा। दूसरे का किसी को भी ध्यान न होगा और कार्य्यवश कहीं दो मनुष्योंका सम्मेलन भी होगा तो संग्राम आरम्भ होजायेगा। यह संग्राम भी एसा संग्राम नहीं होता कि उसी स्थानपर समाप्त होजाये प्रत्युत इस का प्रभाव अन्य मनुष्यों पर भी वैसाही पड़ता है जैसा कि उन पर पड़ाथा। जब किसी जाति की अधो गति होनी हो तो उसके भीतर इसीप्रकारकी सामग्री एकत्रित होनी आरंभ होजाती हैं इस पुस्तक के देखने वालों परमात्मा ने हमको एवं तुमको इस पवित्र भूमि पर निवास दिया है एवं हम तुम अपने लक्षों सजाति बन्धुवों से आच्छादित हैं जिन के पवित्र हृदय हमारे हृदयों से पोषित एवं शक्त होते हैं। जिन की वृद्धि हमारी उन्नति के साथ है। जिनका जीवन हमारे जीवन के साथ पोषित एवं व्यतीत

होता है। पृथक्त्व की हानियों से बचानेके लिये ईश्वर ने:हमें कुछ आशायें इस प्रकार की देदी हैं कि हम उनको केवल अपने बलसे पूर्ण ही नहीं कर सकते किन्तु उन के साहाय की प्रबल आवश्यकता रहिती है। एवँ हमारे भीतर प्रेम पूर्वक सहवास करने के लिये इस प्रकार के बलिष्ट विचार: उत्पन्न किये गये हैं कि जिन से हम पाश्विक सृष्टि से प्रथक् होगये हैं जो विचार कि इस दूसरी सृष्टि में नितान्त बन्द ही बन्द पड़े हैं। इसलिये हमारा धर्म्म है कि इस पवित्र हृदय से परस्पर इस प्रकार का वर्त्ताव करें कि जिससे तीसरा पूरुप हम को दो न समझ सके महात्मा मेरी वाल्डीका कथन है कि "धन्य हैं वेलोग जो हृदयके पवित्रहैं और गरीब हैं जगत् के नाना प्रकार के कष्टों दुःखों एवं क्लेशों का सहन करते हुवे भी शान्ति विश्वासभरे हृदयसे परस्पर मिलकर जीवन व्यतीत करते हैं"

सचाई परमात्मापर विश्वास अपने पर विश्वास परस्पर का प्रेम विद्या सन्तोष दया सदाचार

पुरुषार्थ आदि इसप्रकार के अमूल्य रत्न हैं कि हमारे सबके भीतर होने चाहियें जिस देश जिस जाति एवं जिस व्यक्ति के भीतर यह गुण पाये जांये वहां ही पवित्रता देशभक्ति एवं शान्ति है ऐसा मनुष्य जिस के भीतर इत्यादि लाल होंगे जिस देश अथवा जाति में होगा उसके लिये अमृत मय सिद्धियोंका सञ्चार होगा। हम सब को उसका अनुकरण करना चाहिये। उसके जीवन का उद्देश्यउच्च एवं पवित्र उद्देश्य है। हमे अपने जीवन को उस मार्ग पर लेजाना चाहिये जिस पर कि वह चलरहा है इस से संभव है कि हमभी अपने लिये कुछ लाभ दायक होसकें आप्त पुरुषों का अनुकरण हमारे लिये कल्याण कारक है परन्तु वह मनुष्य जिसने कि अपने जीवन अपनी चेष्टाओं संस्कारों अवस्थाओंको मदारीकी पुतलीके समान अनाप्त पुरुषों के हाथ बेच रक्खाहै संसार का क्या भला करेगा उससे अपना उपकार होनाभी नितान्त दुःसाध्य है उसका होना न होना हमारे लिये समान है। हम उससे कुछ लाभ नहीं उठा सकते

इस प्रकार के निर्दयी अपने आपको व्यर्थ मनुष्य कहिलाने वाले अपनी अवस्थाको मट्टी में मिलाने वाले अपने विवेक को कुचलने वाले मनुष्यों ने व्यर्थ पृथिवीके परमाणुओंको भी अकार्थ खोदिया है। ए रे मनुष्यों के बिना हमारी कोई हानी न थी ऐसा मनुष्य वास्तव में ही अपने आपसे अपरीचित है वह नहीं जानता कि मैं किन पदार्थों का स्वामी हूं मेरे भीतर क्या २ शक्तियें भर रही हैं। उसका जीवन पानी में पड़े नौन के समान है जोकि दो चार मिनट का अतिथि है। हमें अपने प्राचीन मुनियों वीरों के जीवन पर दृष्टि देनी चाहिये कि वे किस अवस्था के मनुष्य थे उनसे हमको अनेक शिक्षायें प्राप्त होंगी इससे हमारा जीवन सचमुच मानुषी जीवन बन जायेगा यह प्राकृत नियम है कि हम जिस प्रकार के जीवन का अनुशील न करेंगे उसी प्रकार की अवस्थायें हमारे भीतर उत्पन्न होती जायेंगी जोकि हमारे आगामि आनेवाले जीवनका हेतु एवं (Foundation) नींव होंगी।

यदि हम स्वयं सोते एवं मृत्यु मय होते हैं तो किसीकी शक्ति नहीं कि हमको जागृत् अथवा जीवित करसके जो अपने आपको स्वयं रोगी रखना चाहता है उसे कोई वैद्य नीरोग नहीं कर सकता महात्मा चाणक्य के कथना नुसार हम पृथिवीमें स्वयं बीजबोते काटते खातेहैं जब हम स्वयं उठना चाहेंगे तो हमको कोई लिलानहीं सकेगा: अतएव हमको चाहिये कि हम स्वयं अपने पांव उठकर अपनी सुधलें अपनी प्रकृतिसे जितना बीमार स्वयं परिचित होताहै उतना वैद्य नहीं होता अपनी अवस्था पर विचार करना हमारा कर्त्तव्यही नहीं किन्तु धर्म है मूर्ख उसे न समझ ना चाहिये जोकि केवल हलही जोतता है नहीं प्रत्युत "अपनी कुलना, के कथनानुसार मूर्ख वहहै जो अपनी वर्त्तमान् एवं अतीतावस्था पर कुछभी विचार न करके उन्हीं पावों खड़ा रहिना चाहता है

जब पांचों पाँडवों को १२ वर्ष के लिये देश निर्वास की आज्ञा हुई थी और वे चले गये थे तो कुछ काल पीछे कुन्ती ने (जो कि उनकी

माता थी) उन्हें एक पत्र लिखा था और उसमें लिखा था कि "ए डरपोक के लड़कों ! ए अपने जीवन को जीते जी धूलि में मिला देने वालो!! उठो तुम्हारी इस अवस्था से तुम्हारे शत्रु ही प्रसन्न हो सकते हैं याद रक्खो जो मनुष्य पुरुषार्थ हीन हैं जिसको अपने आप पर विश्वास नहीं उसको अपने जीवन से निराश हो जाना चाहिये मेरे प्यारो ! उठो अपनी हार्दिक प्रेरणाओं का पीछा करो कुत्ते की मृत्यु मरने से उत्तम होगा कि तुम सर्प के मुख में अपना हाथ देदो, गीली लकड़ी के समान धुखर कर जान देनेसे सूखे घास के समान एक बारही भस्म होजाना उत्तम होगा अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुवे मरना उत्तम होगा इससे तुम्हारा यश होगा यदि ऐसा नहीं तो जीवन की कोई आवश्यकता नहीं है अपने धर्म्म की रक्षा करना अपने उद्देश्य को पूर्ण करना सचाई को अपने जीवन का केन्द्र बनाना तुम्हारा सबका काम है" क्षुद्र हृदय रखने वालों को इस पर विशेष ध्यान देना चाहिये एक महात्मा का

कथन है कि "ऐसे निर्बल धैर्य्यशून्य मतवनों कि गिरकर उठना ही असंभव होजाये किन्तु अपने भीतर धैर्य्य को दृढ़ करते हुये अपने कर्त्तव्य का पालन करो तुम्हारा कल्याण होगा" यदि हम अपने सामने उच्च संस्कार एवं आदर्श को रखते हुवे उसकी प्राप्ति का यत्न करतेर मर भी जायेंगे तौभी न्यून से न्यून यह चिन्ता नहोगी कि हा! हमने कुछ न किया किन्तु ऐसी अवस्था में भी हमको प्रसन्नता होगी कि हम आधा मार्ग अपने जीवन का ले कर आये जगत् के व्यवहारों से हटाने वाला ज्ञानी नहीं कहा जा सकता इनका पूर्ण कर लेना भी वीरता का काम है अन्यथा सहस्रों बीच में ही ठोकरें खातेर चूर होगये हैं परन्तु संसार के सब काम करते हुवे भी हमेंअपने विवेक से सदैव यह प्रश्न करते रहिना चाहियेकि "हम जगत् में निवास करते हुवे क्या और किस प्रकारसे अपनी एवं अपनी जाति की भलाई वा उन्नति कर सकते हैं"

सज्जनों! जगत् के बन्धन धीरेर एवं अज्ञा-

तावस्था में इस प्रकार से उन्नति कर जाते हैं कि महान् यत्न करने पर भी काटे नहीं जा सकते अतएव हमें उनसे सावधान रहकर ही जगत् के कार्य्य करने उचित होंगे। हमारे प्राचीन मुनिगण जगत् के सर्व व्यवहार करते थे परन्तु जीवन और मृत्यु पर उनका पूरा अधिकार था यही कारण था कि वे संसार के संपूर्ण काम करतेहुवे भी मुनि थे ऋषि थे । मित्रवर्ग ! हमारा जीवन सचमुच दो काष्टों के घिसने से निकले हुवे अग्नि के समान है जो कि निकलता ही बुझ जाता है कोई नहीं जान सकता किकहां से आया और कहां जायेगा अतएव इस थोड़े से काल में हम जो कुछ भी अपनी जाति देश एवं प्रिय सन्तान के लिये कर जायेंगे वही अपना होगा । अन्यथा खद्योत के समान एक आध मिनट के चमक जाने से कौनसा संसार का अन्धेरा है जोकि मिट जायेगा । यदि हम यह चाहें कि विषयों बुराइयों एवं मन्दकामों के बीच में रहिते हुवे ही उनका नाश करलें तो यह दुःसाध्य ही नहीं किन्तु असम्भव है ।

हमको याद रखना चाहिये कि शत्रुके बन्धन को अपने गले में डालकर कभी भी किसी ने प्रभु-पर विजय प्राप्त नहीं की। इसी प्रकार इनके वश होकर इनका नाश करलें यह प्राकृत नियम के विरुद्ध है। विरुद्ध इसके हम जितना इनसे विरोध करेंगे उतना ही इनका बल क्षीण होगा। एक महात्मा का कथन है कि 'तुम वह काम मत करो जो कि तुम करना चाहते हो किन्तु तुम वह करो जो कि तुम्हे करना चाहिये'। कैसा सच्चाई से भराहुवा उपदेश और कैसे सादे शब्दोंमें है। क्या संसार में उस करोड़पति एवम् धनिसे नीच कोई अन्य होसक्ता है जिसने कि इस पवित्र मानुषी जीवन को केवल मात्र धन कमाने एवम् विषय भोगने की कल समझ रक्खाहो?। हमें महाराजा रामचन्द्रजी के इन शब्दों को सदैव याद रखना चाहिये कि 'सुखार्थी एवम् अत्यन्त विषयासक्त होना यद्यपि पूर्व २ अच्छा प्रतीत होता है परन्तु इसकाफल आपत्तियों दुःखों एवंक्लेशोंका अम्बर है हमारे संस्कार सदाकेलिये एकसे नहीं रहिते जगत्

के अन्य पदार्थों के साथ २ हमारे सँस्कार वर्त्ताव आदि भी बदलते रहिते हैं आज हम जिस मनुष्य को अत्यन्त प्रिय दृष्टिसे देखरहे हैं कल उसके लिये सम्भव है वह दृष्टि न रहे। आज हम जिसके साथ जिन शब्दों का प्रयोग कररहे हैं कल वे बदलसकते हैं। अतएव हमको प्रत्येक काम में कुछ सावधानी के साथ रहिने की आवश्यकता है। प्रत्येक मनुष्य से वार्त्तालाप करते समय सचेत रहें एसा न हो कि कोई इसप्रकार का प्रयोग करदें जिसकी कि उस समय आवश्यकता नहीं है। अथवा अकस्मात् किसी योग्य मनुष्य की मान हानी ही करबैठें। मान हानी करना प्राचीनों में पाप मानागया है। विचार शील मनुष्य अपने जीवन में सावधानीसे कामलेता है वह आनन्द एवं शान्ति के साथ जीवन व्यतीत करता है। हमको स्मरण रखना चाहिये कि 'वह मनुष्य मनुष्य नहीं किन्तु देवता है जो दूसरे मनुष्य को देखकर प्रेमभरी दृष्टि से देखता एवं प्रसन्न वदन होता हुवा खुलेमस्तक उसे मिलने की चाह रखता है' जिस मनुष्यमें इसप्रकार

के दैवी गुणों का सञ्चार होजाता है वह केवल स्वयं ही नहीं किन्तु लक्षोंके कल्याणका हेतुहोताहै

महाशय 'टामिसकार लायलने' क्या अच्छा कहा है कि जो काम तुम्हारे लिये नियत किया गया है उसे तन मन से पूर्ण करना तुम्हारा धर्महै सम्भव है स्वामी की आज्ञायें विसृत शब्दों में न कही गयी हों परन्तु उनको समझ कर कर्त्तव्य के सम्पूर्ण अन्शोंको पूर्ण करना तुम्हारा काम होना चाहिये अपने कामपर एक सिपाहीके समान दृढ़ एवं निश्चल रहो यदि बुरा भला कहा जाता हो कुछ चिन्ता न करो लोगोंकी निन्दा वा अपमान का सहन करो उनका उत्तर मौनभाव शान्ति समझो कोई मानवी विभाग एसा नहीं जहांकि छिद्रान्वेषण न होता हो इससे घबड़ा कर उत्तम कामोंका छोड़देना उत्तमता नहीं है कामको पूरा करलो जो कुछ कि तुमसे आशा की गयी थी उस को पूर्ण करो, केवल मात्र पुस्तकों के अनुशीलता से जीवन पवित्र नहीं होसकता इसके लिये कुछ करने की आवश्यकता है। वे लोग उन्नति शील

कहलाते हैं जिन में कि दोबातें विशेषतया प्रतीत हों एक तो उत्तम एवं पवित्र मेधा दूसरे अपने काम में दृढ़ विश्वास वे अपने सब कामोंमें इन दो बातों को अपने सामने रखते हैं अन्तको समय आता है कि उन्हें उन्नति शील एवं अच्छा काम दिया जाता है और उनकी विजय होती है ' इन शब्दों से हमें विशेष शिक्षा लेनी चाहिये हम टामिल महाशय के इस कथन में से कुछएक शब्दोंके साथ सहमत हों या न हों परन्तु इस में सन्देह नहीं कि यह कथन हमको एक उत्तम शिक्षा दे रहा है।

समय के हेर फेर से हमारे हृदय में कई प्रकार के तरङ्ग उठते रहते हैं कभी २ तो हमारा चित्त एक काम करने के लिये विकलित होजाता है परन्तु फिर भी हम उस काम को करने नहीं पाते इस का कारण बिना इस के और कुछ नहीं कि उन तरङ्गों अथवा आशाओं का हमारे आत्मा से सम्बन्ध नहीं होता भगवान् कृष्ण का कथन है कि "मनुष्य जिस काम को करना चाहे उसका धर्म है कि पूर्व ही अपने आत्मा अपनी भावना

को उस के साथ मिलादेवे' यह सत्य है कि किसी अभीप्सित काम के साथ अपने हृदय एवं आत्मा का मिला देना मानो अभीष्ट प्राप्ति की कल को घुमा देना है। जिस के घूमने से ही कि कलकी उत्पत्ति होने वाली होती है। ब्राह्मण ग्रन्थों में क्या उत्तम एवं शिक्षा पूर्ण उपदेश है कि "जो कुछ हृदय से चिन्तन किया जाता है वह कहा जाता है जो कुछ भी कहाजाता है वह कियाही जाता है एवं जो कुछ किया जाता है उसकाफल लिया ही जाता है" स्वामी राम तीर्थ जी बहुधा कहा करते थे कि "वह काम कभी नहीं हो सकता जिस के साथ आशा हृदय आत्मा एवं जीवन का सम्बन्ध नहीं होता" हमारा धर्म है कि जो कुछ भी काम करें अपने हृदय विवेक जीवन का उस के साथ सम्बन्ध करें इस से हम को सफलता होगी कार्य्य सिद्धि होगी. इस में सन्देह नहीं है।

हमें यह भी स्मरण रखना चाहिये कि जगत् में जितने भी जीव उत्पन्न किये गये उन सब के

लिये एक जीवन कार्य्य भी नियत किया गया है एवं हमारे लिये भी (क्यों कि हमारा जीवन जगत् में मुख्य जीवन है) एक काम नियत् है, अत एव हमारा धर्म है कि हम उस को जीवनोद्देश्य एवं कर्त्तव्य जानकर करें उस का फल ईश्वर देनेवाले हैं, परन्तु हमें उस के फल की इच्छा नहीं करनी चाहिये प्रत्युत उसे ईश्वरपर ही छोड़ना उचित है हां उत्तम काम केवल इस लिये करने चाहियें कि वे उत्तम हैं इस लिये नहीं कि उन का फल अमुक होगा वा अमुक किन्तु "गारफ़िल्ड" के कथनानुसार "यदि हमें कोई काम दिया गया है एवं यदि कोई काम करने योग्य है तो वह इस योग्य भी है कि हम उस को सच्चे एवं पवित्र हृदय से संभाल कर करें' प्रत्येक उत्तम और योग्य काम सच्चाई एवं योग्यता से ही करना उत्तम तथा कल्याण कारी होगा । किसी काम को उत्तमता से सँवार कर करना नीचता एवं विगाड़कर करने से प्रायः कठिन भी नहीं होता।

सज्जन वर्ग हमें प्रत्येक समय अपने जीवन

पर दृष्टि देने की आवश्यकता है और उसकी त्रुटियों के पूर्ण करने को हमारा शरीर सदैव काल के लिये नहीं है इसके लिये अत्यन्त थोड़ा समय दिया गया है परन्तु तिस परभी यदि हम उसको नाच और चौपड़ खेलने में खोते हैं तो हमसे अधिक मन्दमति और कौन गिना जायगा कदाचित् इसी लिये यह कहावत प्रसिद्ध है कि समय का व्यर्थ खोना सीखना होतो हिन्दुस्तानियों से सीखलो मानो इनके पास इसप्रकार की शालायें खुलीहुई हैं इसके भांतरी भाओं में सन्देह नहीं किया जा सकता किसी चौपड़ खेलने वाले को पूंछने से निश्चय होसकता उसको पूंछो कि तुम एसा क्यों करतेहो उत्तर तत्काल मिलेगा कि दिन काट रहे हैं अथवा दिन पूरे कर रहे हैं क्या यह असत्य है जिस जीवन एवं शरीर के विषय में महात्मा बुद्ध जैसे पुकार मचारहे है कि ऐजगत् के रहिने वालों तुम किस असाध्य रोगमें हो रहे हो तुम्हारे शरीरों का मट्टी में मिलजाना अखण्डनीय है फिर भी न जाने) तुम किस निश्चेन्ता एवम् भरोसे पर

जीतेहो,, उसी जीवन के एक २ अमूल्य मिनट पल घड़ी अथवा घण्टा के लिये नहीं प्रत्युत दिन के लिये कहिरहे हैं कि 'काट रहे हैं, और तिसपर भी समाप्ति नहीं किन्तु महीनों वर्षों इसी दिन कटी की भेंट होजाते हैं श्रीरामचन्द्र जी का लक्षमण को उपदेश है कि "हेलक्षमण यह मनुष्य जीवन उस कमल एवं पुष्प के समान है किजो प्रातः काल खिल कर अपनी सुगन्धि से समीप वर्त्तियों को सुगन्धित करता हुआ सायंकाल को नेत्र मूंदलेता (अथवा कुमला) जाताहै,, हमारा जीवन काटने के लिये नहीं बनाया गया किन्तु एक महान् कार्य्य की साधना के लिये बनाया गयाहै अतएव हमें उचित एवम् योग्य यही है कि हम उसे पूर्ण करने का उद्योग करें आत्मिक बल शून्य इसे कभी पूर्ण नहीं कर सकता यद्यपि वह चाहताहै परन्तु उसके लिये करना अत्यन्त कठिन है वह यदि आरम्भ भी कर लेगा तो जरासी ठेससे गिरजायगा यह जीवन जिसको कि संपूर्ण आशाओं की पूर्त्तिकी कल समझना चाहिये

हमारे लिये कोई मन्द वस्तु नहीं है किन्तु पवित्र एवम् अद्वितीय जीवन है हमारा धर्म यही है कि हम इसे एक उच्च वस्था और पवित्र धाम की प्राप्ति का साधन बनायें यद्यपि हमारा जीवन अपने साथ नाना दुःख एवम् आपत्तियें भी रखता है परन्तु यही जीवन आनन्द शान्ति एवम् प्रसन्नता का भण्डार भी कहा जासकता है जिस मनुष्य के पास इस भण्डार की ताली है एवम् जो मनुष्य इस को खोलना जानता है वह इसके भीतरी रत्नों को प्राप्त करेगा। चाहे किसी अवस्था में भी क्यों न व्यतीत होताहो हमारे लिये आनन्द मठ है इन सब बातोंपर विचार करनेके लिये हमको उच्चसंस्कारों एवं विचारोंकी आवश्यकता है वास्तवमें उच्च संस्कार एवम् विचार ही जीवन का चिन्ह हैं। जहाँ नीच और मन्द संस्कार होतेहैं वहां मृत्यु होता है जिस आत्मा में उच्च संस्कारोंका निवास है समझो कि वह जीता है अन्यथा मृत्यु है। हम अपने जीवन की सीमा महीनों एवं वर्षों से बांधते हैं जो कि भूल है जीवन की सीमा वर्षों वा

महीनों पर नहीं होती किन्तु उच्च संस्कारों नेकी वा सदाचारों पर होती हैं। जो मनुष्य सदाचारी नेक एवं उच्च संस्कार रखता है वही जीवमोद्देश की सामग्री रखता है और पूर्ण करता है। आने वाला जगत् इस बात को भूल जायेगा कि हमारी अवस्था कितनी थी या हमारे पास धन कितना था किन्तु यह बातें सब को याद होंगी कि हमने दूसरों के साथ क्या वर्त्ताव किया हमने दूसरों की भलाई में कितना समय खर्च किया हम सदाचारी रहे अथवा दुराचारी उच्च संस्कारों की प्राप्ति के लिये हमें अधिकतर अपने पुरुषाओं के जीवन का अनुशीलन करना चाहिये जिस से कि हम आत्मिक गौरव का चित्र अपने अन्दर रखसकें अच्छे मनुष्यों की सङ्गति से लाभ उठाना चाहिये। अच्छी एवँ उत्तम पुस्तकों से लाभ उठाना चाहिये। इस से हमारे अन्दर उच्च संस्कारों का विकास होगा एवँ मन्द संस्कारोंका विनाश भगवान् कृष्ण का कथन है कि सँस्कार ही मनुष्य को स्वर्ग का दर्शन कराते हैं संस्कार

ही नर्क गामी बनादेते हैं अतएव हम सब को उच्च संस्कारों के पानेका यत्न करना चाहिये उच्च संस्कारों का पाना एवम् मन्द संस्कारों का नाश हमारे अपने आधीन है। जब हम इस कार्य्य में सफल मनोर्थ होंगे हमारी सब आशायें पूर्ण होंगी हम नेक बन जायेंगे सँसारके सब पदार्थ हमारे लिये लाभ दायक होजायेंगे हमारे सब के पूज्य "भीष्म, जीका कथन है कि उस मनुष्यके लिये जगत् के छोटे बड़े संपूर्ण पदार्थ सेवक एवम् लाभदायक होजाते हैं जो अपने लिये प्रथम आप लाभ दायक बनताहै क्या उत्तम शिक्षाहै। हमें इस बात के सोचने की प्राय आवश्यकता नहीं है कि हमारे आस पास की अवस्थायें किस प्रकार की हैं किन्तु इस के सोचनेकी अवश्य आवश्यकता है कि हम स्वयं किस प्रकार के हैं अत एवम् हमें उचित होगा कि हम अपने सँस्कारों और जीवनकी आलोचना करते रहें जिससे कि हम को अतीत एवम् वर्त्तमान् जीवन के मुकाबिला करनेका अवसर मिलतारहे। इससे हमकई

मन्द सँस्कारों से बच सकेंगे एवं आनेवाले जीवन को पवित्र तथा लाभ दायक बनासकेंगे'

जिनका जीवन जीवन होता है जो सदाचार रूपी धनसे माला माल होते हैं जिन का हृदय शुद्ध एवं पवित्र होता है जिनका मनवाणी और जीवन एक होता है जो काम को काम समझ कर करते हैं जो कर्त्तव्य की पालना कर्त्तव्य समझ कर करते हैं उन के आचरण स्वयं दूसरों को अपनी ओर खींच लेते हैं खिले हुवे एवं सुगन्धि भरे फूलों को कोई आवश्यकता नहींहोती कि वे लोगों एवँ भ्रमरों के पास सन्देश भेजते फिरें उनकी सुगन्धि उन का सौन्दर्य्य स्वयं सब को अपनी ओर खींच कर आशिक एवम् प्रेमी बना लेता है।

"उद्देश और शासन"

हम जीते और जीने की इच्छा रखते हैं अतएव हमारे जीवनके किसी उद्देश एवं शासन की आवश्यकता है रेल चलती है परन्तु इसके

लिये आवश्यक है कि पृथिवीपर लाईन बिछी हो, निर्बल च्यूंटी से लेकर महान् हस्ति पर्य्यन्त सब किसी शासन एवं उद्देश के आधीन हैं। सूर्य चन्द्रादि आकाश गामी नक्षत्र, पृथिवी के अन्तर्गत जितने भी पदार्थ हैं सब अपने २ उद्देश एवं शासन के आधीन हैं। जहां जहां भी कोई सत्ता विद्यमान है वहां २ उसका शासन भी उसके साथ ही विद्यमान है। परन्तु हमको परमात्मा ने ज्ञान दिया है इस लिये अथवा आनेवाले दुर्भाग्य वश हम अपने आपको उद्देश वा शासन शून्य चलाने की चेष्टा करते हैं यह हमारी अत्यन्त भूल है इसी लिये प्रति दिन नई से नई ठोकरें खाते हैं और खायेंगे यदि हम अपने आपको ठीक एक उद्देश और शासन के अन्दर रखकर चलायें जो कि हमारे लिये नियत किया गया है तो हम अपने आपको सर्व प्रकार के कष्टों से बचा सकते हैं। सच जानिये आधी से अधिक आपत्तियें केवल हमने इस लिये सहेड़ली हैं कि हमारे जीवन का कोई नियम एवं शासन ही नहीं है,,

जो मनुष्य अपने जीवन को प्राकृत नियमानुकूल रखता है वह इस प्रकार की आपत्तियों से बचा रहता है बहुत सी आपत्तियें प्राकृत पदार्थों के न समझने से भी उत्पन्न हो जाया करती हैं। नियम एवं उत्तम उद्देश से व्यतीत किया गया जीवन उत्तम माल निकाल जाता है। वह न केवल अपने लिये वरन लक्षों को अपनी सत्ता से लाभ पहुँचा जाता है। हमारा जीवन अमृतमय है जोकि नियम विरुद्ध चलनेसे विषमय होजाता है जिससे केवल हमाराही अधःपतन नहीं होता किन्तु सहकारियों के भी विनाशका हेतु वनता है। जगत् कीठोकरोंसे भय करनेवाला मनुष्य अपना सुधार नहीं करसकता और सुधार करने वाला उपरोक्त ठोकरों की परवाह नहीं किया करता महाशय हटवर्ट का कथन है कि जो मनुष्य अपना सुधार आप करसकता है उसका विरोध सब जगत् भी क्यों न करले उसके वास्तविक आनन्द और उच्च पद की प्राप्ति में कोई वाधा नहीं डाल सकता अपने जीवन को सुधार ने सुख मय बनाने एवं

किसी शासन विशेष के भीतर रखने के लिये किसी समय और अवस्था की आवश्यकता नहीं है किन्तु उसका सर्व प्रकार से सर्व प्रिय एवं पवित्र बनाना हमारे अपने आधीन है चाहे जिस समय और जिस अवस्था में उसे वैसा बना लें जैसा कि हम चाहते हैं। सर्व प्रियता पुरुषार्थ परोपकार धार्मिकपन आदि सब उत्तम गुण हैं इनकी हम सब को आवश्यकता है कोई जाति उन्नति के शिखर का अवलम्बन नहीं कर सकती जिसके भीतर कि पुरुषार्थ आदि उपरोक्त गुण विद्यमान नहीं। समय काल और अवस्था की प्रतीक्षा करने वाली जातियें पुरुषार्थ हीन होकर नष्टप्राय हो चुकीं उनका आज यदि कोई चिन्ह देखना चाहें तो दुःसाध्य है। कौन कहिता है कि समय बदल गया! नहीं यह वही पृथिवी है जिस पर कि मर्यादा पुरुषोत्तम महाराजा राम चन्द्र जीका निवास था वही वायु चलता है जो कि अर्जुन एवँ द्रोण के समय में चलता था। वही पर्वत हैं जिनमें हमारे सबके माननीय मुनि-

वर्ग निवास करतेहुवे आत्मिक एवं प्राकृत विज्ञान का अनुभव और विकास करते थे। वही भागीरथी गङ्गा की लहिरें चल रही हैं जिन के तट पर बैठकर महा मान्य पतञ्जलि जी ने योग साधन करते हुये एक भाषा को विज्ञान मय बनाने का उद्योग करते थे। वही विद्युत है जो कि ईश्वर विद्वेषी नास्तिकों का विध्वन्स करने को एक १६ वर्ष के ब्राह्मण (शङ्कर) के अन्दर उत्तेजित होती थी। उन्ही जातियों का निवास है जिनके १०-१० वर्ष के बालकों ने दीवारों में चिने जाने पर भी जातीय गौरव का परित्याग करना पाप समझा था। समय एवँ अवस्था का विचार आलसी किया करते हैं जो कि ८ बजे के सोये प्रातःकाल ८ ही बजे उठते हैं अथवा जिन्हें आत्म विश्वास नहीं होता जो आत्मिक भावों से अपरिचित होते हैं एसे हीन भाग्य मनुष्य न तो किसी कार्य का आरम्भ ही कर सकते हैं न अपना सुधार ही कर सकते हैं वे महात्मा भर्तृहरिके कथनानुसार जगत्की ठोकरोंसे

भयभीतहुवेरकिसी(जातीय देशिक अथवा आत्मीय) कार्य्य का आरम्भ ही नहीं करते वेनीच वृत्ति वाले हैं उनमें से कई एसे भी हैं जो प्रारम्भ तो करते हैं परन्तु उन्हीं ठोकरों का दर्शन करके वहीं चित्त होजाते हैं विरुद्ध इसके वे मनुष्य कैसे भाग्य-शाली हैं जो कि फिर२ ठोकरें खाते हुवे भी अपने उद्योग से च्युत नहीं होते।

धैर्यावलम्बी मनुष्य जानता है कि फूलके साथ कांटे अवश्यहोतेहैं अत एव वहकामका त्याग नहींकरता। एसे मनुष्यों के लिये ऊपरोक्त ठोकरों विघ्नोंका पांव तले मसलदेनाही कृतकार्य्य होनेका प्रमाण होताहै

शत्रुवों के विना किसी राजा को सेना की आवश्यकता नहीं होती विना बीमारी के वैद्य के घर कोई नहीं जाता इसी प्रकार विघ्नों आप-त्तियों ठोकरों चोरों के विना कार्य्य कर्त्ताओंकी आवश्यकताही क्या होती है आज तक जितने कार्य्य हमारे मुनियों पुरुषाओंने किये हैं सब तत्पर होकर किये यदि विघ्नों से भय किया जाता तो गौतम के कई विरोधी थे शंकर के पीछे

लक्षोंघात लगाये फिरते रहे अन्तमें विष द्वारा प्राण लेही लिये परन्तु क्या इससे उस महान् आत्माके उद्देश में कमी हुई ? क्या मसीह को फांसी देदेने पर उसका उद्देश मिट गया ? क्या गुरुतेग बहादुर का शिर कटजाने पर उनका उद्देश नष्ट होगया?क्या उनके छोटे २ पौत्रों के दीवार में चिनदेने से मुसलमानों में उन्नति होगयी ?

क्या स्वामी दयानन्दको विष देदेने से उनके उद्देश में कमी होगयी?कुछ नहीं यह सब क्षुद्र हृदयों के क्षुद्र विचारों का ही फल है एसी २ घटनायें हानी पहुंचाने के स्थान उन्नति कर जातिहैं और वे महान् आत्मा प्रसन्नता पूर्वक अपनी सत्ताकी बलि उनमें देजातेहैं और उनके आत्माको किंचिन्मात्र भी कष्ट नहीं होता इसी प्रकार के अपवित्र जीवनोंके लिये महात्मा बुद्धने कहा है कि अयि! जीवनोद्देश की पूर्त्तिरूपी यात्रामें जोर छोटे विघ्न आपत्तियें आतीहैं और जो२ ऊँची नीची दशा यें झेलनी पड़ती हैं उस में यदि किसी मनुष्य का हृदय दुःखी नहीं होता किन्तु धैर्य युक्त स्थिर

रहिता है समझलो कि उसने जीवन यात्रा का बहुतसा मार्ग तयकरलिया है अपने उद्देशपर दृढ़ रहिना उससे च्युत न होना अपने नियमोंका जगत् में चिर स्थायी होने का हेतु है। उत्तम और उद्देश पूर्ण जीवन अपने जीवन का फल अपने साथ ही नहीं लेजाता किन्तु उसका बहुत सा भाग उसकी भावी सन्तान के उच्च बनाने का हेतु होजाता है।

प्यारों हमाराजीवन उद्योग और सहन शीलता के लिये बनायागया है इसका जितना भाग सत्कर्म्म करने धैर्य सम्पादन जातीय एवं आत्मिक सुधार में व्यतीत होगा उतना ही सफल समझना चाहिये केवल मात्र शरीर को कष्ट देनेका नाम आत्मिक सुधार नहीं है प्रत्युत इस के साथ २ भींतरी विचारों का विकास करना भी इसमें सम्मिलित हैं। उत्तम विचार हमें सत्कर्मों के करने में सहायता देतेहैं। बहुत से मनुष्य इस प्रकृतिके भी हैं अपने जीवनका कोईउद्देश एवंनियम नियत न करके सदैव अपने आपको दुखी बनाने का यत्न करते रहते हैं

एसे मनुष्यों को अपने आप पर दया करनी चाहिये और अपने प्यारे जीवन के साथ पूर्ण प्रकार से स्नेह रखकर उसके लिये एक उद्देश स्थापन करना चाहिये जिसका स्थापन करना वा पूरा करना उनका प्राकृत धर्म है। अन्यथा उनके लिये यही उचित होगा कि वे प्रसन्नता पूर्वक मानुषी सूचीमें से अपने नाम को मुक्त कर लेवें क्योंकि एसे भाग्य शाली मनुष्याकृतियोंकी श्रीभर्तृ के कथनानुसार मनुष्य जातिको आवश्यकता नहीं है।

हमारा जीवन संसार के संपूर्ण चराचर जीवनों से उत्तम और उच्च जीवन कहा जाताहै अत एव कोई कारण प्रतीत नहीं होता कि इसका उद्देश और शासन भी उसी उत्तम और उच्च श्रेणीका न हो। परमात्मा ने प्रत्येक जीवन के साथ उस को अपनी अपनी दशानुसार ही उसका जीवनोद्देश भी नियत किया है इसी प्रकार हमारा भी वास्तव में हमें अपने जीवनोद्देश के लिये उसी उद्देशकी अन्वेषणा करनी चाहिये जोकि परमात्मा ने नियत किया है और हमारे अपने बनाये नियम

भी वहीं तक सत्य होसकते हैं जहाँ तक कि उन में ईश्वरीय नियमोंकी अनुकूलता पायी जाये और यदि उनके विरुद्ध हैं तो उनका न मानना ही धर्म्म नहीं प्रत्युत उनका तोड़ फोड़ देना हमारा परम धर्म्म होना चाहिये।

जगत् के सम्पूर्ण उन्नति शील पदार्थ हमको परमात्मा की ओर से दिये गये हैं हमारा पूर्ण कर्त्तव्य है कि हम अपने सुधार के लिये शक्तिभर उनसे लाभ उठाने का उद्योग करें। नीच एवम् मन्द उद्देश जीवन का संकोच करते हैं उत्तम एवं उच्च उद्देश जीवन का विकास करते हैं प्रथम का फल मृत्यु है द्वितीय का जीवन यही विनाश एवं विकास सिद्धान्त का भाव है हमें चाहिये कि हम इस विनाश वा विकास के सिद्धान्त को बुद्धि गोचर कर लें यह हमें जीवनोद्देश की पूर्त्ति में नितान्त सहायक होगा। हम को साथ ही यह भी समझलेना चाहिये कि विनाश का मार्ग अत्यन्त खुला और पूर्ण विस्तृत है उस ओर जाने वालों की संख्या भी अधिक है परन्तु वि-

काश का मार्ग अत्यन्त छोटा और तीक्ष्ण है इसी लिये उस ओर जाने वालों की संख्या अत्यन्त थोड़ी है क्योंकि उसमें नाना प्रकार के कष्टों एवं आपत्तियों का सामना करना पड़ता है। परन्तु सामना करने वाले तो शीघ्रता से उस मार्ग का उल्लङ्घन कर जाते हैं और हत हृदय उससे घबरा पीछे भागने का यत्न करते हैं परन्तु अब वे पीछे भी नहीं आसकते अतएव वहीं ठोकरें खाते २ अपना विध्वंस कर लेते हैं यदि वे आगे जाना चाहते तो कोई बाधा नथी उनके अपने आधीन है मार्ग वर्तिनी आपत्तियें कुछ आपत्तियें नहीं जो उनके दृढ़ संकल्प के सामने स्थिर हो सकें। परन्तु इसमें कुछ पुरुषार्थ की आवश्यकता है।

यदि हम हिम्मत करें और नियतोद्देश पूर्वक चाहें तो वही बन सकते हैं जो कि चाहते हैं। अञ्जील में एक स्थान पर क्या उत्तम लिखा है "मांगोगे दियाजायेगा तलाश करोगे मिलजायगा खटखटाओगे खोला जायेगा" भाव गर्भित वाक्य है। मत मतान्तरों के व्यर्थ वितण्डा के स्थान

उत्तम होगा कि हम शान्ति एवं आनन्द प्राप्तिकी गवेषणा और अपने सुधार में प्रेम भरा जीवन व्यतीत करें। छिद्रान्वेषण करने वालों के भाग में शान्ति का अभाव होना प्राकृत नियम है। छिद्रान्वेषण की संतप्तज्वाला में झुलसेहुवे जीवन शान्ति और आनन्द भवन में निवास नहीं कर सकते अतएव हमें उचित होगा कि हमइस विनाश करने वाली अग्नि से अपने आपको बचायें कई मनुष्योंने इसीको सत्य की तलाशका साधन समझ रक्खा है उन्हें याद रखना चाहिये कि महाराजा रामचन्द्रजीके इस कथनानुसार मनुष्य के वर्त्तमान कामोंको देखकर हमकभी कहिसकते हैं कि वह आगे को क्या होगा अपने आगामि जीवन और सत्य प्राप्ति का प्रमाण नहीं देसकते।

हमारा जगत् में आना एवं मानुषी जन्म का पाना स्वयं इस बात का सूचक है कि हमारा कोई प्रयोजन विशेषहोना चाहिये। सम्पूर्ण जगत् हमारे सामने है हमारी इच्छा हो तो हम शुभ कर्म करें अथवा मन्द कर्म करें रुचि होतो लाभ

दायक बनने का प्रयास करें अथवा आलसी बन कर हानि कारक बनने का। परन्तु देखना यह होगा कि इन में से कौन सा प्रकार उत्तम एवं सबके लिये सुख वर्द्धक है। क्या जगत् हमको बताता है कि हमारा जन्म सफल हो गया? क्या हमने अपने जीवन से अपना अथवा किसी अन्य जीवन का सुधार किया? यदि इनका उत्तर कुछ नहीं तो हमने क्या किया अभी तक कोई भी मनुष्य यह नहीं सिद्ध कर सका कि जीवनोद्देश से गिर कर एवं प्राकृत नियमों का विरोध करके कभी भी उत्तम फल निकला हो। यदि कोई मनुष्य मकानकी छत पर से गिरकर अपनी टांग तोड़ लेता है तो इससे पृथिवी की आकर्षणी धारा में कुछ हेर फेर परिवर्त्तन नहीं होगया उसकी अपनी भूल से हमने लक्षों आपत्तियें उत्पन्न करली हैं सहस्रों रोग उत्पन्न कर लिये और कररहे हैं। क्या कभी किसी आलसी ने सुख पाया? क्या कभी किसीप्राकृत नियम विरोधी ने सुख से जीवन व्यतीत किया? उत्तर कुछ नहीं

मित्र वर्ग हमको उचित है कि हम अपने आपका सुधार करें हम अपने आपको इस योग्य बनायें कि हमअपने प्यारे देश एवं जातिका सुधार करसकें बुझा हुवा दीपक कभी किसी अन्य दीपक को जलाने की शक्ति नहीं रखता इसी प्रकार यदि हम अपना सुधार नहीं करते किसी का क्या कर सकेंगे ? महाशय "आव वरी" का कथन है कि मनुष्य अपने भाग्य का स्वामी आप है वह जिस प्रकार चाहे अपना मार्ग बनासकता है । यदि वह एसा नहीं करता तो यह उसकी अपनी कमी है परन्तु यदि वह चाहे तो अपने जीवन को विजय जीवन बनाये अथवा मृत्यु के मुख में जाये उस के अपने आधीन है,, ऊपरोक्त कथन की सत्यता में हमें किसी प्रकार का आग्रह नहीं है परन्तु हमारी दशा इस से कुछ विलक्षण है हम निर्धन हैं हम परतन्त्रहैं हम आलसी हैं हमपुरुषार्थ हीन हैं हम दीर्घ सूत्रीहैं अतएव यह कैसे संभव है कि हम विजय जीवन बनासकें इत्यादि ध्वनियें हमारे कई नव युवकों के मुख से निकलेंगी परन्तु हमको

स्मरण रखना चाहिये कि प्रत्येक मनुष्य की उद्देश एवं भावना शक्ति अत्यन्त बलिष्ट शक्ति है और विशेष करके जबकि मनुष्य अपनी भावनाओं एवं विचारों को ईश्वरीय नियमों के साथ अपने प्रेम भरे हृदयसे स्वच्छता पूर्वक मिलादेताहै, उस की संपूर्ण भावनायें पूर्ण होजाती हैं वह अपने उद्देश को शीघ्रही पूर्ण करके आने वाले जगत् पर उपकार कर जाता है उसका आत्मा पवित्र होजाता है परमात्मा उसको आशीर्वाद देते हैं

'शीलता और आडम्बर'

"युक्ति से भोजन करने वाला युक्ति से चेष्टा करने एवं व्यहार करनेवाला योगी दुःखों का नाश करलेताहै " भगवान् कृष्ण,, ।

"साधारण जीवन एवं प्रसन्नता मनुष्यके दो उत्तम भूषण है "सुकरात ।

जो मनुष्य यथा प्राप्त पर अपना निर्वाह कर सकताहै उसे धनी मनुष्यों के साहाय्य की कोई आवश्यकता नहीं "फार नेकुलन्" ।

सादापन एक ऐसागुण है कि जिसके साथ किसी अन्य गुण की तुलना नहीं दी जासकती । पर अपना आपही आदर्श एवं दृष्टान्तहै । हम जिस किसीसे भी सादगी से पेश आयेंगे वह प्रसन्न होगा मोहित होजायेगा संपूर्ण जगत् सादगी पर मरता है। परन्तु यह जानलेना अतिकठिन है कि सादगी किस गुण का नाम हैं । वास्तव में इसका वास्तविक स्वरूप बतलाया भी नहीं जा सकता । कुछ हो इस में सन्देह नहीं कि यह एक गुण है और वह अच्छा गुणहै। जितना हमको आडम्बर अथवा वाह्य चमक दमक से कष्ट मिलता है उससे अधिक सादगी अथवा शीलता से सुख मिल सकता है । कहिते हैं कि "शेख़ सादी" जब भारत में आया तो किसी धनी मनुष्य ने उन को निमंत्रित किया और भोजन में नाना प्रकार के मेवे लेह्य पेह्य बनवाये जब शेख़ जी खाने बैठे तो धनीने बार२ पूंछा "भोजन अच्छा तो है आपके पसन्द तो आया" परन्तु शेख़ जीके मुख से यही निकलता रहा कि "कुत्ता दावति जीराज़ी" अर्थात् हमारे

देश (शीराज) के निमन्त्रण कहां ? दूसरे दिन धनीने और भी बढ़ बढ़ कर भोजन बनवाये परन्तु शेखजी के शब्दों में कुछ परिवर्त्तन न हुवा अन्त को एक बार किसी कार्य विशेष वश धनी को उस देश में जाना पड़ा तो शेख जी के मिलनेपर उन्हींके यहां भोजन हुवा जब धनी जी खाने बैठे तो "खिचड़ी" मिली और इसीप्रकारसे जितने दिन धनी जी वहाँ रहे सादे से सादे भोजन ही मिलते रहे जब वहां से चलने लगे तो नम्रता पूर्वक पूंछा कि शेख जी आप तो शीराज की दावत २ पुकारा करते थे इसमें कौनसी उत्तमता है खिचड़ी आदि तो वहां भी करते ही हैं शेख जीने उत्तर दिया कि यही उत्तमता हैं कि तुम चाहे दो वर्ष बैठे रहो मेरे नेत्रों में नहीं खट कोगे, इस कहानी के सत्य होने में हमारे पास कोई प्रमाण नहीं है परन्तु हो या नहो इस में सन्देह नहीं कि हमारा ऊपरी आडम्बर दो चार दिन ही चल सकता है परन्तु सादगी में अथवा साधारण तया हम संपूर्ण जीवन बिना किसीप्रकार

की रोक-टोक के व्यतीत करसकते हैं। हम युवा हों अथवा बालक वा वृद्ध हों अथवा क्षीणावस्था।प्रत्येक अवस्था में जगत् का चक्र हमारे सामने रहेगा। और हमें उस में घूमना होगा। अत एव हमको स्थान स्थानसे सादगी एवं नम्रताकी शिक्षा लेनी चाहिये। जगत् के कोश में यद्यपि और भी बहुत से उत्तम पदार्थ हैं परन्तु उन में सादगी अर्थात् शीलता भी एक रत्न है। इसका मूल्य वही जान सकते हैं जिनके पास कि यह होता है। हमें याद रखना चाहिये कि जिनके पास शीलता है जिन का हृदय शुद्ध भावों से भर रहा है जो वाह्य आडम्बरों से शून्य हैं उनका जीवन निर्विघ्नता से अपनी यात्रा को पूर्ण करेगा। हम निर्धन हैं हमारे धन का अभाव है हमारे में भूखों की संख्या अधिक है हमारे में शिक्षा एवं विज्ञानका बल नहीं है हमारी वृत्ति (मजदूरी) कुछ नहीं हमारी आय (आमदनी) नितान्त थोड़ी है अर्थात् संपूर्ण)॥। रोज़की तिसपरभी हम आडम्बरों में चूर हैं तो हमसे अधिक संसारमें हत भाग्य कौन

कहा जा सकता है। जिस कोश की आमदनी से खर्च अधिक होता है उसके दीवाला निकलने में शेष दिन कुछ नहीं होते।

मन्द वासनाओं का गुलाम होना सबके समीप मन्द है परन्तु तिसपर भी वासनाओं की गुलामी में अधर्म करने पर उतर आना और भी पाप है॥ अत एव हमें अपनी वासनाओं को उतना ही उन्नत करना चाहिये जितना कि हम उनके भोजन का अनायास प्रबन्ध करसकते हैं। अन्यथा उनका अधिक बढ़ाना इससे उत्तम होगा कि द्वार २ कुत्ते के समान फिरते दिखाई दें। महात्मा भर्तृहरि का कथन है कि तुम आकाश मार्ग का अवगाहन करो अथवा पृथिवी में घुसकर आसन जमाओ स्वर्ण मय पर्वतों पर भ्रमण करो या इन्द्र के राज्य के अधिकारी बनो वासनायें कभी शान्त न होंगी इनका न बढ़ना ही इन की शान्ति का उपाय है वृथा व्यय सर्वथा बुरा माना जाता है। हमें न केवल भोजन एवं वस्त्रों में ही सादगी लानी चाहिये वरन वाणी को भी इस भूषण से शोभाय

मान करना चाहिये। बहुत मनुष्य इस प्रकार के हैं कि जो एक २ बात करते भट्ट के समान शब्द कोटियों की माला गूंथ देंगे इस से न केवल समय ही व्यर्थ जाता है प्रत्युत कभी२ अभिप्राय भी गुम्म होजाने का सन्देह होजाता है। इस विषयमें हमें अपने पुरुषाओं के जीवन व्यवहार पर अधिक दृष्टि देनी चाहिये कि वे किस प्रकार से सादा और साधारण जीवन व्यतीत करते थे।

सज्जन वर्ग ! धनी उस मनुष्य को न समझना चाहिये कि जिसके पास बहुत सी माया जमा हो रही है किन्तु उत्तम धनी वह मनुष्य है कि "जिस की वासनायें कम हैं" जिस के हां आडम्बर या दिखानेका नाम वा निशान भी नहीं जिसकी कम वासनायें भी शीघ्र पूरी होकर शान्त हो जातीहैं किसी महात्माका कथन है कि जितना सादगी में सुख है उससे अधिक आडम्बर में दुःख एवं कष्ट है मसाले दार चट पटे भोजन करने वालों से सीधे साधे भोजन वाले अच्छे एवं सुखी रहते हैं जहां तक होगा हमारे लिये सादापन श्रेयस्कर

होगा इसमें आडम्बर नहीं है 'शीलता' शब्दस्वय मेव कैसा सादा और शील सम्पन्न है। यूनान के प्रसिद्ध भक्त "हीरू" का कथन है कि जितना भी सुख मानवी सृष्टि को दिया गया है उस में से धनी और राजाओं के भाग्यमें थोड़ाही आया है किन्तु अधिक भाग उनका रहाहै जो आडम्बर को छोड़कर सादगीमें अपना जीवन व्यतीत करते हैं यह सच है किसी धनी की वाहिरी टीप टाप देख कर विश्वास न कर लेना चाहिये कि यह भीतर भी इसी सुख में होगा। शीलता (सादगी) का ही फल है कि रामचन्द्रजी एक उच्च कुलके राज कुमार १४ वर्ष बनों में भ्रमण करके भी दुःखी एवं विकलित-चित्त नहीं हुवे। इसी का प्रभाव है कि चलते समयभी सीताजीके मुखसे यह शब्द निकले कि 'स्वामिन्! जहां-जहां आप पाँव रक्खेंगे मैं कांटे हटाया करूंगी' सादगी उत्तम रत्नों में एक है हमारा सब का धर्म है कि अपनी दशा पर पूर्ण दृष्टि देते हुवे इस का अवलम्बन करें। अर्थात् सर्वथा सादा भोजन करें सादा वस्त्र पहिनें

यहां तक कि बड़ों छोटों सब से सादा शब्दों से ही वार्त्तालाप करें इससे आनन्द होगा वासनायें कम होंगी समय व्यर्थ न जायेगा।

शिक्षा

विद्या को विद्या समझकर पढ़नेवाला सहज ही विद्याके उत्तम फलकी प्राप्ति करलेता है "श्रीव्यास"

शिक्षा मनुष्य का दूसरा बन्धु है "भर्तृजी"

विद्या शून्य मनुष्य चमड़े के हस्ति एवं मृग के समान नाम मात्र का मनुष्य होता है। "मनुजी"

वे लोग धन्यवाद योग्य एवं अपने कर्त्तव्य पालन में कृत कार्य गिने जाते हैं कि ब्रह्मचर्य एवंउच्च शिक्षा द्वारा अपनी सन्तान की शारीरिक एवं आत्मिक शक्तियों की पूर्ण वृद्धि करते हैं

यह अटुट भण्डार है इसे जितना भी व्यय करोगे उतना ही बढ़ेगा "स्वामी दयानन्द"

विद्या मानुषी जीवनका एक शृङ्गारहै "सुकरात"

हमें शिक्षा की पूरी २ आवश्यकता है और ऐसी आवश्यकता है कि जैसी नेत्रों को सूर्य्य आदि के प्रकाश की जैसे कानों को आकाश की जैसे गर्मी को सर्दी की परन्तु जब तक हमारे पास कोई ऐसा शासन अथवा नियम न हो जो कि हमारे जीवन के नियमों का ही व्याख्यान रूप हो एवं हमारा विवेक भी उसके विषय में उसी प्रकार की साक्षी देवे अर्थात् महात्मा तुलसीदासजी के कथनानुसार "कर्त्तव्य एवं संस्काररोका" न हो तब तक न तो हम किसी को शिक्षा दे ही सकते हैं और न ही स्वयं उत्तम एवं उच्च शिक्षा की प्राप्ति कर सकते हैं। शिक्षा एक ऐसा रत्न है कि हमें पाशविक सृष्टि से निकाल कर मानुषी सृष्टि में लाता है।

ऐसे रत्न की प्राप्ति के लिये कुछ थोड़े से यत्न एवं उद्योग की आवश्यकता नहीं। दूसरे शब्दों में हम इसे यूं कहि सकते हैं कि यह एक प्रकार की कल है जिसके द्वारा कि पशुओं से मनुष्य बनाये जाते हैं अतएव इस कल के बनाने आदि में कितने पुरुषार्थ की आवश्यकता होगी तिस पर

कल भी जिसकी प्राप्ति के मार्ग में बीसियों आपत्तियें हाथ फैलाये मुख में डालने को खड़ी हों एक विद्यार्थी उसके हस्तगत हुवा नहीं कि झट अपने उद्देश से च्युत हुवा।

एसी आपत्तियों की विद्यमानता में उत्तम शिक्षा का उपलब्ध अत्यन्त दुःसाध्य होता है शिक्षा प्राप्ति की तो यह दशा है परन्तु वर्त्तमान समय के विद्यार्थी इससे चार पांव आगे पायेंगे। उन्हें इस समय विद्या से अधिक कोई भी वस्तु घृणा करने के योग्य दिखाई नहीं देती इस प्रकार के विद्यार्थी बहुत कम मिलेंगे जो विद्या को विद्या एवं ज्ञान समझ कर प्राप्त करते हों कुछ तो माता पिता के भयसे कुछ लागडाग के वश होकर कुछ नौकरी इत्यादि लालचों से परन्तु इनसबकी दौड़ धूप भी परीक्षा के दिनही नहीं२ परीक्षा की अन्तिम घड़ी तक ही होती हैं जहां परीक्षा का अन्तिम परचा लिखा वहां शिक्षा का भी अन्तिम परचा होजाता है। पाठशाला को छोड़ा और पुस्तकें सन्दूक में बन्द कीं उन्हें या तो कोई दूसरा निकालले अन्यथा

दीमक की भेंट होगयीं। एसे भाग्य हीन विद्यार्थी अपने शिक्षा कालिक जीवन को भी व्यर्थही खोलेते हैं। और उससे किंचित भी लाभ नहीं उठाते। प्रति सहस्र नौसो निनानवें विद्यार्थी हैं जिन्होंने अभी तक शिक्षा सम्बन्धी उद्देश का ही निश्चय नहीं किया ऐसी अवस्था में धींगा धींगी प्राप्तकी शिक्षा से लाभ भी क्या उठा सकते हैं। इन बातों को एक ओर रहिने दीजिये आश्चर्य तो यह है कि अभी तक हमने शिक्षा प्राप्ति का कोई काल अथवा समय भी निश्चय नहीं किया।

हमें ध्यान रखना चाहिये कि हमारी शिक्षा उस दिन नहीं वरन उस क्षणसे ही आरम्भ होजाती है जिस क्षणमें कि हमारे इस वर्त्तमान ढांचे के लिये हमारे माता पिताके विचारानुसार रज और वीर्य का संयोग होताहै सचपूछाजाये तो कालिजों स्कूलों एवं शालाओंकी प्राप्तकीहुई शिक्षा क्याकोई अन्श क्या बहुत अन्श हमभूलजाय तो आश्चर्य्य नहीं परन्तु गर्भावस्था में माताके संस्कारों द्वारा प्राप्तकी शिक्षाका एक अणुभी नहीं भूलसकते वह

हमारी प्रकृति बनचुकी उसका हमसे प्रथक् होना मुश्किल ही नहीं वरन असम्भव है। इसी प्रकार हमारी शिक्षाकी कभी समाप्तिभी नहीं हुई किन्तु "अफ़लातून" के कथना नुसार सारी अवस्था चलती रहिनी है।

शिक्षा का उद्देश एक उच्च उद्देश होना चाहिये वह शिक्षा शिक्षा नहीं जो हमारे अन्दर से छोटे२ एवंक्षुद्र संस्कारों को निकाल उनके स्थान उच्च एवं आदर्श मय संस्कारों का प्रवेश करा कर हमारी आत्मिक शारीरिक एवं सामाजिक सुधार और उन्नतिका हेतु नहीं बनती।

शिक्षाका उद्देश यह होना चाहिये कि वह हमारे हृदय एवं विचार शक्ति की ग्रन्थियों का छेदन भेदन करती उनको पूर्ण प्रकार से विस्तार देवे। और इतना विस्तृत करे कि हम जातीयता के विषय में कभी भी अपनी बुद्धि को विभिन्न न कर सकें। महाशय "हरबर्ट" का कथन है कि सदाचारिक शिक्षा का काम यही है कि उसको प्राप्त करके मनुष्य कुचेष्टा न करें, और प्रत्येक

वासना से जोकि उस पर पुनः२ आरूढ़ होती है विह्वल न होवें। किन्तु अपने आपको वश में रखता हुवा इतस्ततःच्युत न हों. और सदैव अपने संस्कारों को विस्तृत कर सकें। शिक्षा धार्मिक हो अथवा जातीय हो किसी प्रकार की भी क्यों न हो उस का मूल तत्त्व यही होना चाहिये कि जिसको प्राप्त करके स्वयम् नेक बनकर दूसरों को नेक बनावें। यूरोप के एक लेखक "स्माइल" के कथनानुसार शिक्षाका मुख्यउद्देश "स्वतंत्रता" है और वे कहिते हैं कि ज्यों२ तुम उसके नियमानुसार वर्त्ताव करना सीखोगे त्यों २ तुम को वह वीर एवं स्वतंत्र संस्कार युक्त बनाती जायेगी।

संकटों ठोकरों एवम् आपत्तियों द्वारा प्राप्त की गई शिक्षा उत्तम एवं चिरस्थायी होती है क्योंकि उसमें हमारी अपनी परीक्षाका अँशहोताहै

हमारी शिक्षा किसी प्रणाली विशेष से होनी चाहिये जिससे कि हम किसी विशेष नियमानुसार शिक्षा प्राप्त करते हुवे आनेवाली संतान के लिये अपने जीवन के परीक्षण छोड़सकें। श्रीमनुजी का

कथन है कि 'शरीरका पोषण अन्नसे होता है बुद्धि एवं आत्मा का पोषण शिक्षासे होता है' अतएव जिस प्रकार शरीर के लिये उत्तम एवं पुष्टिकारक अन्नकी आवश्यकता होती है इसी प्रकार बुद्धि और आत्माके पोषण के लिये कौन कहिसकता है कि उत्तम एवं पुष्टिकारक शिक्षा की आवश्यकता नहीं है। हमारे जीवन की सम्पूर्ण आत्मिक अवस्था का भार हमारी शिक्षा पर है इस अवस्था में हमें विचार यह करना है कि 'बाप हुक्का पीरहा है मा बच्चेको गोद में लिये बैठी है बत्तख अभी तालाब में से निकली है' इत्यादि इस प्रकार की शिक्षासे हमारे आत्मा और बुद्धि में कौनसी पुष्टि आयेगी अथवा हमारा शरीर पुष्ट होगा?

इसी प्रकार से 'बिल्ली चूहे को मिली उसने उसे काटा' इत्यादि शिक्षाओं से आत्मा में कौन परिवर्तन होगा?। हम पीछे दिखा आये हैं कि शिक्षा का उद्देश हमारे विचारों को फैलाने वाला होना चाहिये न कि 'बिल्ली चूहा तोते' की कहानियों से बिल्ली चूहा और तोते बनाना। अतएव हमें

शिक्षा प्रणाली पर विशेष ध्यानदेने की आवश्यकता है। जो शिक्षा प्रणाली माता पिताको गुलाम बनाना सिखातीहो जो शिक्षा प्रणाली अपने गुरुकी मानहानी करना सिखाती हो, जो शिक्षा अपनी जातिसे नहीं २ अपने आपसे घृणा करना सिखाती हो, जिस शिक्षासे जातीय विशेष गुणों का नाश होताहो, जो शिक्षा जातीय गौरव जातीय सभ्यता जातीय उच्च इतिहासही नहीं किन्तु स्वयं जातीयताका नाश करती हो और विद्यार्थीको सिखाती हो उससे कितना आत्मिक सुधार होसकता है कितना विचार गौरव विस्तृत होसकता है इसपर विचार करना हमारा सबका धर्म्म है। जो शिक्षा जीवन के शासन को पांव तले कुचलना सिखाती है, जो शिक्षा जातीय कर्त्तव्यों की हंसी उड़ाना सिखाती हो जो शिक्षा जातीय सत्कार की मट्टी पलीत करना सिखाती हो, उस शिक्षासे जितना भी सुधार होसकता है एक विचार शील मनुष्य उत्तमतासे अनुभव करसकताहै।हमको स्मरण रखना चाहिये कि कोई भी जातीय गौरवका नाश करने

वाली शिक्षा जातीय उन्नतिका हेतु नहीं होसकती किसी विद्वान् का कथनहै कि ' जिस शिक्षाके साथ साथ धार्मिक शिक्षाका सम्मेलन नहीं होता वह शिक्षा विद्यार्थी के सदाचार एवं आत्मिक अवस्था पर अपना कुछ भी प्रभाव नहीं डाल सकती " कदाचित् यही कारण है कि वर्त्तमान शिक्षा के विद्यार्थी आत्मिक उन्नति एवं आत्मिक सुधार शून्य हैं। वर्त्तमान शिक्षा के विद्यार्थी गण की यह दशा है कि वे अपने जीवन से भी लाचार हैं उनकी अवस्था का चित्र खींचते हुवे लज्जा एवं हृदय कम्प आता है भला जिस शिक्षाका उद्देश ही परीक्षा के शिकञ्जे से निकलना हो मानो वह एक रोग है जिस की औषधि परीक्षा पत्र पर लिखी हुई है उससे विद्यार्थी अपने आपका क्या सुधार कर सकता है ? आये दिन बीसियों विद्यार्थी विष खाने एवं रेल की लाइन पर लेट रहिने के लिये उत्सुक रहिते हैं। पिछले दिनों फ़रूअरी मास में मेरे पास एक विद्यार्थी का पत्र आया था और उसमें उसने अपनी वर्त्तमान

दशा का पूरा२ रूपक दिखाया था मैं जब कभी भी उस पत्र को देखता हूं रोमाञ्च हो जाता है ऐसीर बीसियों घटनायें प्रति वर्ष परीक्षा के दिनों के पश्चात् देखनें एवं सुनने में आती रहिती हैं। उन्हें यह ज्ञात नहीं कि हम जीने एवम् विजय प्राप्त करनें के लिये जगत् में उत्पन्न कियें गये हैं अतएव हमारा धर्म है कि उसी उद्देश पूर्त्तिके साधनों का सञ्चय करें। किसी काम को उत्तम रीति से कर देनें का यही फल है कि वह उत्तमता से होगया। परन्तु यह विचार हृदयों में तब उत्पन्न हो सकते हैं जब उन को इस प्रकार की शिक्षा दी जाये। परंतु उनके भी क्या वशहैकी वर्त्तमान अवस्थामें उनके शिरपर पोथियों विषयों का इतना भार हो रहा है कि बेचारों को भोजन छादन कुछ नहीं समझता स्वास्थ्य कें पुस्तक तो उनको पढ़ाये जाते हैं परंतु उससे लाभ उठाने के लिये समय भी कहीं से खोदकर दिया जाता तो उत्तम होता उन्हें परीक्षा देतें देतें साथ ही अपने आपकी भी परीक्षा देनी

पढ़ती है। और यदि अपनी परीक्षा देकर भी दूसरी परीक्षा में सफलता न हुई तो उन में से कई एक तो मृत्यु का आश्रय लेते हैं और जिन के पास इसकी सामग्री नहीं होती वे एक दो वर्ष और पुस्तक घोटने के साथ साथ अपने आपको भी गरल में डालते हैं।

शिक्षा का फल हृदय एवं आत्माका युगपद् विकास होना चाहिये परन्तु यहां विकासके स्थान विनाश है।

प्यारे विद्यार्थीगण तुम निष्फलता का मुख देखकर वर्तमान जीवन से घृणा मत करो। आशा संसार में एक ऐसी वस्तु है कि जिसके भरोसे हम सब जीते हैं। यही दशा जोकि आज तुम्हारी है कभी २ मेरी भी थी परन्तु मैं ठोकरेंखा २ के समझ गया हूं ठोकरों और चोटों की शिक्षा उत्तम और चिरस्थायी होती है यदि तुम इतने पर ही घबड़ा कर अपने आपसे घृणा करने लगगये तो मानो तुमने जगत् पर सिद्ध कर दिया कि तुमसे अधिक निर्बल आत्मा किसी का नहीं है वर्तमान जीवन

से घृणा करके हम क्या करेंगे हमारे पास कौनसा प्रमाण है कि हमको आने वाला दूसरा जीवन उत्तम जीवन मिलेगा संभव है वह इससे भी गिरा हुवा मिले फिर क्या होगा हमको इसी अवस्था में प्रत्येक प्रकार की आशा रखनी चाहिये यही एक मात्र साधन है जिससे कि हम कृत कार्य्य होसकते हैं संभव है कि जिस समय हम अपने आपसे घृणा करके अपनी हत्या की तयारी करने लगें वही समय हमारी उन्नति के बीजबोये जाने का हो। संभव है हमारी आने वाली सफलता एवँ प्रसन्नता की चाबी उसी समय हमारे हाथ में आने वाली हो फिर पश्चात्ताप करना पड़ेगा परन्तु उस पश्चताप से कुछ बन नहीं पड़ेगा मृत्यु प्रत्येक के लिये हाथ फैलाये बैठी है वह एकदिन सबके लिये आती है और अवश्य आती है फिर क्या आवश्यकता है कि हम उसे पूर्व से ही बुलाकर मिलना चाहते हैं। इससे कुछ उत्तम फल की संभावना मतकरो किन्तु वर्त्तमान जीवन

रूपी तिलों सेही निकाला गया तेल हमारे लिये पुष्टिकारक होगा।

वास्तविक शिक्षा हम को पुस्तकों से नहीं मिलती किंतु प्रकृति के गूढ़ दृश्यों से और घर की माताओं से मिलती है हमने पीछे लिखा था कि हमारी शिक्षाका आरम्भ पाठशाला मेंनहीं होता किन्तु माता के गर्भमें होता है और यह सच है। यह शिक्षा जिसका कि चित्र हमने ऊपर दिया है हमारी सामाजिक शिक्षा है परंतु इससे यह न समझ लेना चाहिये कि सामाजिक शिक्षा इसी का नामहै नहीं? किन्तु तीनों प्रकार की शिक्षा एकसाथही होती है। हमें इस प्रकार की शिक्षा प्राप्त करनी चाहिये कि जिससे हम युगपद् ही शारीरिक सामाजिक एवम् आत्मिक उन्नति करसकें यदि एक शिक्षा हमको शारीरिक उन्नति के साधन बतलाती हुई आत्मिक उन्नति एवम् जातीय लक्षों से वञ्चित रखती है तो हमें उस की कोई आवश्यकता नहीं है। शारीरिक बल पुष्टि के साथही हमको आत्मिक पुष्टि करनी है

आत्मिक पुष्टि के विना हम किसी प्रकार के भी बल एवँ शक्ति का वर्त्ताव नहीं कर सकते हैं। वर्त्तमान आत्मिक की सीमा एतत् शिक्षा शिक्षितों के जीवन पर दृष्टि देने से प्रतीत हो जाती हैं। तुम जानते हो कि राजे राजच्युत होगये पृथिवी के तख्ते पलट गये परँतु आत्मिकों के आचार्य्यों की विजय पताका अभी लहराती दिखाई देती है मुबारिक एवं पवित्र हैं वे जीवन सफल एवं धन्यवाद पात्र हैं वे आत्मा जो उत्तम एवं पवित्र शिक्षा को प्राप्त करके तथा उसके वर्त्तमान विघ्नों से घोर संग्राम करके अपने आत्मा और हृदय को युगपद् विकाशित करते हुवे अपने अपने देश एवं जाति के लिये पूर्ण लाभदायक सिद्ध होते हैं

"विवेक,,

जो मनुष्य मनमें कुछ और रखकर दूसरोंपर कुछ और प्रगट करता अर्थात् विवेक का हनन करता है उसने जगत् में कौनसा पाप नहीं किया? (अर्थात् सब पाप किये) वह आत्महत्यारा

है एवं आत्मा का चोर है " श्रीव्यासजी म० "
जोमनुष्य अपने विवेक और प्राकृत नियमोंसे किसी प्रकार की साक्षी नहीं लेता वह सच्चाई की प्राप्ति का एक साधन अपने हाथ से खोता है,, मेज़ीनी

अपने विवेक की आज्ञा का पालन करो आनन्द रहोगे कष्ट न होगा,, ' सुकरात"

"विवेक,, उस विचार शक्ति का नाम है कि जिससे हमको उत्तम और मन्द कर्म्मों का ज्ञान होसके कई मनुष्य इसे शिक्षा तथा विज्ञान प्राप्ति का फलमय पुञ्ज मानते हैं इसीप्रकार अन्तःकरणों के समान इसे भी मन चित्त आदि से प्रथक् ही मानते हैं कई चेतनकी एक शक्ति मानने वाले हैं इसीप्रकार भिन्न लोगोंके भिन्न२ मतहैं अस्तु मेरा विचार है कि कुछ भी हो अन्ततो गत्वा यह एक उत्तम साधन है जिससे कि हमें पुष्कल लाभ की संभावना है। हमारे जीवन का आधेसे अधिक भाग केवल दूसरों के अनुकरण करने में जाताहै हममें से एसे मनुष्य वहुत थोड़े हैं जो केवल दूसरों के गुणों का ही अनुकरण करते हैं प्रत्युत वाह्य

आडम्बर का अनुकरण अधिकतासे किया जाताहै कारण कि हम प्रत्येक काम में अपनी वासना और इच्छा को मुख्य रखते हैं यदि इनके स्थान विवेक को मुख्यतया समझने के अभ्यासी होजायें तो हमारे भीतर इस प्रकार के संस्कार कभी न आने पावें ।

विवेक हमारा एक प्रकारसे रक्षक है। हम जब कभी भी कोई निन्दित कर्म करने लगते हैं वह रोकने का यत्न करता है। और जब २ उत्तम कर्म करने की इच्छा करते हैं आनन्द और हर्ष वर्द्धक समाचार सुनाता है। अत एव हमको उचित ही नहीं किन्तु योग्य है कि हम उसकी आज्ञा का पालन करें। इसमें सन्देह नहीं कि हम कभी २ उसके पीछे लगकर कष्ट भी उठाते हैं परन्तु वह कष्ट सच मुच कष्ट न समझना चाहिये किन्तु आने वाले आनन्द का सूचक समझना चाहिये जो मनुष्य विवेक को अपनी वासनाओं के आधीन करना चाहताहै वह अज्ञानी है विवेक को कभी भी अपनी वासना के आधीन न करना चाहिये

अन्यथा यह उनके आधीन होता हुवा और तद्विप-
यक ही अपनी सत्ताको करता हुवा संभव है हम
को किसी अच्छे काम में धोखा देजावे। एसी
अवस्था में उससे किसी उत्तम शिक्षा की आशा
नहीं की जासकती उचित यही है कि अपने
आपको उसके अनुकूल चलाया जाये जिससे उत्तम
हो। और अवस्थाओंके दलसे ठोकरें न खाते फिरें
महात्मा बुद्धका कथन है कि "जो मनुष्य विवेक
के अनुकूल अपना आचरण करता है वह अपने
जीवन को पारस पत्थर के समान बना लेता है"
विवेक कोई वस्तु नहीं कि जिसके हनन करने से
मनुष्य को कोई उत्तम फल की प्राप्ति हो सके।
विवेक को संस्कृत में आत्मा भी कहिते हैं।
इसके अन्दर मन्द कर्मोंका प्रवेश नहीं होसकता
इसका हनन करने वाला महापापी माना जाता
है उपनिषदों में आत्म हत्यारे को अत्यन्त नीच
कहा गया है। और लिखा है कि "आत्म हत्यारा
अन्धकार मय लोक में प्राप्त किया जाता है"
यदि हमारा विवेक किसी मन्द कर्म के करते

समय हमको धिक्कार नहीं देता है तो यह न समझना चाहिये कि यह कर्म उत्तम था अथवा इसके करने में उस की सम्मति है। किन्तु ऐसा होने का कारण विशेष यह होता है कि हम मन्द कर्म करते२ विवेक की सत्ता को एक प्रकार का धक्का लगा कर दबा देते हैं। और उस की शिक्षा मय ध्वनि की परवाह न करते हुवे अपने आपमें ऐसा अभ्यास उत्पन्न करलेते हैं कि उस की आवाज होते हुवे भी हम तक नहीं पहुंचती वास्तव में न तो उस की शिक्षा बन्द होती है नहीं उसकी सत्ता का अभाव होता है। जो लोग यह मानते हैं कि विवेक में भूल भी हो सकती है उन्हें इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि दो और दो तीन या पांच कभी नहींहोते यदि होते हैं तो समझानेवाले की समझका फेरहै. इसी प्रकार विवेक अथवा आत्मा की सत्ता में कभी भी भूल नहीं होती किन्तु उसकी वर्त्ताव क्रिया में भूल होती है। जिस प्रकार एक घड़ी के अर्लाम की सूई हमने चार बजे पर करके चावी

लगा दी कि यह पूरे चारबजे हमको जगा देगी अब चार बजते ही उसकी ध्वनि निकलनी आरम्भ होजायेगी परन्तु जबतक हमारा विचार इस बात पर दृढ़ है कि हम चार बजे की ध्वनि सुन कर उठेंगे तब हम उठते हैं और कुछ दिन इस परही ठीक वर्त्ताव करके पुनः किसीकारण विशेष अथवा अपने आलस्य के हेतु हम उठना नहीं चाहते तो क्या उस घड़ी में ि उस अलार्म की ध्वनिका निकलना बन्द होजायेगा कदापि नहीं जब तक उसको चाबी लगती है वह चलेगा हम चाहे उठें या न उठें परन्तु जब उसकी चाबी कोई दूसरी ओर घुमा देगा तो उस के कुछ वश नहीं। इसी प्रकार जब हम विवेक की ध्वनिको सुनकर उसके अनुकूल कृत्य करते हैं तब भी वह अपनी आवाज हम तक पहुंचाता है और जब हम नहीं करते तब भी पहुंचाता है हां यह दूसरी बात है कि हम उसकी ध्वनि की परवाह कुछ न करें। अतएव यदि हम मन्द कर्म करतेर उसकी ध्वनि सुननेके योग्य नहीं रहें तो इस का

अभिप्राय यह नहीं कि वह कर्म उत्तम है अथवा विवेक विरोध नहीं करता जिसप्रकार संखियाखाने वालाप्रतिदिनखाताहै और उसकी विषसे हानीनहीं होती अथवा वह मरनहीं जाता तो इसकाभाव यह नहीं होता कि संखिये में विष नहीं अथवा वह किसी की मृत्यु का कारण ही नहीं होसकता। किन्तु यही कहा जायेगा कि उसे प्रति दिन खाने का अभ्यास होजाने से उस को विष की विशेष प्रतीति नहीं रही इसीप्रकार यह नहीं कि हमारा आत्मा अथवा विवेक मन्द कर्मोंपर धिक्कार नहीं करता किन्तु हमने उसी ध्वनि के न सुनने अथवा सुनकर अमल न करने का अपने आपमें अभ्यास डाल रक्खा है इसलिये उसकी ध्वनी की विशेष प्रतीति नहीं होती वास्तव में उसकी सत्ता और सम्मति वैसी ही निश्चल है जैसी कि इन अवस्थाओं से पूर्वथी श्रीव्यासजी का कथन है कि "आत्म हत्यारा माराजाताहै उसका संस्कार एवं परलोक दोनों लोकों में उसके लिये कोई स्थान नहीं है,, ।

मेरे प्यारो! ऐसे सज्जन से जो कि सदैव हमारा शुभ चिन्तक हो कभी भी विमुख न होना चाहिये यह अत्यन्त ही प्यारा मित्र है संसार में दूसरे मित्र तभीतक साथी हैं जब तक हम अनुकूल हैं परन्तु यह मित्र ऐसा है कि प्रतिकूल होनेपर भी मन्द शिक्षा कभी न देगा अतएव हमारा सबका धर्म है कि हम इसकी आज्ञा के अनुकूलचलें जिससे कि हम अपनी जीवन यात्रा में निर्विघ्न वहां जासकें जहां की कि हम अभिलाषा है " जगत् की कुछ परवाह न करके केवल मात्र आत्मा की आज्ञा का (सत्या सत्य विचार पूर्वक) पालन करनेवाला कभी भी दुःखी न होगा " वह धन्यहै उसका जीवन पवित्र है जो विवेक की इच्छानुकूल चलना ही अपना परम कर्त्तव्य समझता है।

"प्रकृति"

प्रकृति का अनुशीलन करने वाला धोखा नहीं खासकता, "महात्मा बुद्ध"।

"प्राकृत विज्ञान को न्यूनाधिक कोई नहीं कर सकता" "भर्तृ"।

'जीवन के उद्देशों और नियमों को बतलाने वाली विस्तृत पुस्तक प्रकृति है'' सुकरात'

प्रकृति से हमारा अभिप्राय 'फ़ितरत' अथवा से है। जगत् के पुस्तकालय में प्रकृति भी हमारे कर्त्तव्य कर्मों को हम पर प्रकट करने वाला एक महान् ग्रन्थ है। हमें चाहिये कि हम इसके अनुशील के लिये कोई विशेष समय नियत करें और इसके अनुशीलन से अपनी जीवन यात्रा के लिय विशेष लाभ कारक सामग्री एकत्रित करें इसका एक २ अक्षर हमें उत्तम से उत्तम शिक्षा दे सकता है। जो मनुष्य शुद्ध पवित्र नेत्रों से इसका अनुशीलन करता है जीवन के संपूर्ण भेद हस्ता मलक के समान उसके सामने खुलजाते हैं। इस के एक दिन क्या एक घड़ी भर के अनुशीलन से इतनी शिक्षा मिल सकती है कि जितनी मनुष्यों के वर्षों सिर पटकाने परभी ना मिलसके। परन्तु आवश्यकता इतनी है कि हम शुद्ध एवम् पवित्र हृदय से इसका अनुशीलन करें। जिन मनुष्यों को छिद्रान्वेषण का अधिक अभ्यास पड़गया हो

और आगे के लिये करने का शौक हो उनके लिये यह एक उत्तम लक्ष (निशाना) है । उन्हें चाहिये कि इसपर खूब अभ्यास बढ़ायें इससे दो लाभ होंगे १ तो अभ्यास पूरा होजायेगा दूसरे फल भी उत्तम निकलेगा ।

इस पुस्तक के लिये किसी शाला विशेष की आवश्यकता नहीं है । नहीं वहाँ इसका आना संभव है किन्तु इस के लिये एकान्त स्थान की अत्यन्त आवश्यकता है । वहीं इसके भीतरी भावोंका भेद खुलता है । इसकी रचना पर गूढ़ दृष्टि देने वाला इसके संपूर्ण भेदोंको पालेता है । इसके विषय कुछ गूढ़ और गुप्त नहीं है किन्तु इसके संपूर्ण सिद्धान्त महाशय 'चिलहिंग'के कथनानुसार नितान्त खुले और उज्वल रूपमें विस्तृत हैं प्रकृति का कोई काम ऐसा नहीं कि जो छिपकर अथवा गुप्त रूप से होता हो । किन्तु इसके संपूर्ण शासन इतने विस्तृत हैं कि प्रत्येक भीतरी नेत्र रखने वाला मनुष्य उत्तमता से समझ सकता और अपने लिये फल निकाल सकता है ।

हमें याद रखना चाहिये कि प्राकृत नियमों का विरोध करने वाला कहीं भी सुखी नहीं होसकता जहां जायगा दुःखी होगा हमारे में एक रोग आघुसा है और वह यह है कि हम प्रकृति के प्रत्येक नियम अपने स्वभाव एवं जीवन के अनुकूल पाने के सदैव उत्सुक देखे जाते हैं यह एक महान् रोग है इस में सफलता के स्थान किसी २ समय महती हानी भी हुई है परन्तु फिर भी संभलने का उद्योग नहीं करते। हमें उचित ही नहीं वरन् हमारा धर्म है कि हम अपने जीवन को उसी मार्ग पर चलायें जिस पर कि प्राकृत नियम चलाना चाहते हैं न कि प्राकृत नियमों को अपने कल्पना किये गये मार्ग पर। इस प्रकार का मनुष्य लक्षों ठोकरें खाने पर भी अपने मनोर्थ में सफलता प्राप्त नहीं करता। विरुद्ध इसके अपने को तदनुकूल बनाने वाला नाना उत्तमफल निकालकर साफल्यको प्राप्त होजाता है।

हमारी बुद्धि इसके समझनेमें असमर्थहै कि प्राकृत नियमों एवंईश्वरीय नियमोंमें क्या सम्बन्धहै परन्तु

इस में सन्देह नहीं कि प्रत्येक अवस्था में हमारे लिये इसका अनुशीलन लाभ दायक है हमें योग्य है कि जो २ उत्तम शिक्षायें इस पुस्तक से हमको मिलें हम उन्हें सुरक्षित रक्खें ताकि हमारे आगे से आने वाला जगत् इससे पूर्ण लाभ उठासके। संसार में उनका नाम सत्कार से लिया जाताहै जो कि उसपर अपने परीक्षणों (तजर्बों) शुभ विचारों द्वारा उपकार कर जाते हैं। अन्यथा मुसाफिर खाने के समान लक्षों आते एवम् जाते रहिते हैं कौन किसी को याद करने वाला है।

प्राकृत नियमोंका उल्लङ्घन एवं भङ्ग करने वाला न केवल अपने कार्य्य में ही विघ्न डाललेता है वरन उसके एक २ अणु को अपना शत्रु बनालेता है। उसको लाभ पहुंचाने के स्थान संपूर्ण सृष्टि उसके विरोध करने को उद्यत होजाती है और प्राकृत नियम अपनी शक्तियों द्वारा उस के विनाश की सामग्री एकत्रित करनेलगजातेहैं। इस सँग्राममें अन्त को उन्हीं का विजय होता है और विरोधी मनुष्य अपने आपका भी नाश कर लेताहै।

उन्नति एवं सुखकी इच्छा करने वाले मनुष्य का धर्म यही है कि वह अपने जीवन को प्राकृत नियमानुकूल बनाने का उद्योगकरे। इसके नियम क्या हैं ? इसका पता उसीको लगसकता है जो कि इसका परिशीलन करता है। इसके नियम किसी एक आध पदार्थ में स्थित नहीं हैं किन्तु प्रत्येक स्थान में पाये जाते हैं। रातके समय बाहिर एकांत में बैठ इसका परिशीलन करनेवाला इसके नियमों को सुगमता पूर्वक समझ सकता है।

एक कपोत का बच्चे को एक २ दाना उठा कर खिलाना बन्दरोंका छाती से लगाय फिरना एक फ़ाख़्ता का आषाढ़ की धूपमें घरकी तलाश करना उसके भीतर भावों को प्रत्यक्ष कररहा है। बयीयेका एक एक तिनका एकत्र करके अपने घोंसले के बनाने में दृढ़ चित्त होना और अन्त को एक अपूर्व मकान बनाकर सफलता प्राप्त करनी इस प्रकार के दृश्य हैं जो उत्तमता से प्रकट करते हैं कि मनुष्य किसप्रकार से उद्योगी और विश्वासी होना चाहिये एवं कैसे ढङ्गों से जीवन व्यतीत

करना चाहिये। यह सब जो हम देखरहे हैं प्राकृत प्रकाश की छटायें हैं। जो कदाचित् अब हमारी समझ में न आये परन्तु परिशीलन के समय हम इनको उत्तमता से समझ एवं जानसकते हैं। हम अपने विज्ञान बलसे यद्यपि नाना प्रकार के आविष्कार करसकते हैं और मानवी एवं पाश्वी जगत् में भेदभी करसकते हैं परन्तु हमारेमें इतनी शक्ति नहीं है कि हम इन नियतों मेंसे किसी एक का परिवर्त्तन करसकें। यदि एक चक्रवर्त्तिराज की माता अपने प्यारे बेटे को अपने स्तनों से दुग्ध पिलाती हुई उससे प्रेम करतीहै तो इसमें सन्देह नहीं कि प्राकृत नियमानुकूल एक गाय भी अपने स्तनोंसे अपने प्यारे पुत्र को दुग्ध देकर उसके शरीरगत धूलि अपनी पवित्र रसनासे चाटकर अपने हृदयस्थ प्रेमका परिचय देसकती है।

प्राकृत दृश्य अपने सौन्दर्य्य में सबसे निराले हैं उनकी तुलना और किसी से नहीं दीजासकती किसी भले मनुष्य का कथन है कि "जब हम अस्त

होते सूर्य्यकी ओर देखते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है मानो स्वर्ग के किवाड़ खोले जारहे हैं और ईश्वरी उल्लास की राशियें पृथिवीपर प्रकाश कररही हैं" इस समय का सौन्दर्य्य सचमुच ऐसा है कि हम उससे आनन्द लेसकें। यह हमारे नियमों एवं जीवन शासनों की उत्तमता से प्रकट करते हैं। एक बात और भी हमें याद रखनी चाहिये कि इस सौन्दर्य्य मय दर्पण को देखकर ही चकित न होजाना चाहिये किन्तु इस सुन्दर दर्पण में जिस आनन्दमय प्यारे का मुख दिखाई देता है उसका सौन्दर्य्य इससे भी लखों गुण अधिक है और वह परमात्मा है।

"धन्य हैं वे महात्मा एवँ पवित्रहृदय जो प्राकृत नियमों की गवेषणा करके अपने जीवनो-द्देश को पा लेते हैं और उसके अनुकूल अपने पवित्र जीवन का बर्ताव करते हुवे दूसरों की भलाई एवं उन्नति में अपने जीवन को अर्पण करते हैं"

"धर्म्म" तथा "कर्त्तव्य"

"मनुष्य कर्त्तव्य कर्मों का पालन करता हुवा ही महान् पद की प्राप्ति कर सकता है"
"भगवान् कृष्ण" गीता।

"जिस२ काम से सँसार का भला हो वह करना और दूसरे का छोड़ देना ही उत्तम है"
"स्वामी दयानन्द"

"अपने धर्म्म एवँ कर्त्तव्य का पालन करो तुम्हारा कल्याण होगा" "ज़रदश्त"

जगत् में विना मनुष्य के कोई ऐसा पक्षी पशु अथवा जड़ पदार्थ नहीं देखा अथवा सुना-गया जो कभी अपने धर्म या कर्त्तव्य (जीवनोद्देश)से च्युत होगया हो। सूर्य्य जिस नियमा-नुकूल आज से एक लक्ष वर्ष पूर्व उदय एवम् अस्त होता था उसी नियमानुसार आज उसकी गति है। छोटी २ च्यूंटी से लेकर बड़े२ हस्ति भी अपने नियमों से च्युत नहीं हो सकते। प्राकृत नियमों का परिशीलन करने से विदित

हो सकता है कि संसार में किसी के शिर पर यदि कुछ बोझ रखागया है तो वह केवल कर्त्तव्य अथवा धर्म्म है। किसी विचार शील ने अपने वृत्तान्त लिख ने क्यांही उत्तम कहा है कि "रात को जब मैं सोया तो अपने जीवन को स्वप्न में भोगों विलासों से आनन्दित पायो परन्तु जब प्रातःकाल उठा तो ज्ञात हुवा कि जीवन धर्म्म एवं कर्त्तव्य पालन करने ही की कल है" इसपर विशेष विचार करने के लिये प्रत्येक पदार्थ की भीतरी दशा पर दृष्टि देने की आवश्यकता है हमको प्रत्येक पदार्थ के भीतर दृष्टि देकर देखना चाहिये कि किस प्रकार से प्रकृति का एक२ अणु अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहा है। कोई एसा स्थान नहीं जहां इसका उल्लंघन किया गया हो जो मनुष्य अपने कर्त्तव्य कर्मोंका यथावत् पालन करता हुवा मृत्यु का आनन्द लेता उसकी सच मुच मुक्ति होजाती है मोक्ष एसे मनुष्यों को लेने के लिये पूर्व से ही स्वर्ग के कपाट खोले उपस्थित रहता है। उसे दिन रात आनन्द मय प्रतीत

होताहै महात्मा बुद्धका कथनहै कि " एक कर्त्तव्य पालन करने वाले का कष्ट कष्ट नहीं होता "

जगत् सदैव उसका अनुसरण करता है भगवान् कृष्ण का कथन है कि " धार्मिक मनुष्य जिस मार्ग का अवलम्ब करता है उसी का अवलम्बन इतर जगत् भी करता है" धर्म्म अथवा कर्त्तव्य का पालन वही मनुष्य कर सकता है जिसके कि हृदय में उसके लिये प्रेम एवं उत्साह है। उसके भीतर इसके लिये ऐसी प्रीति होती है कि वह इसको ही अपना जीवन समझ लेता है उसकी दृष्टिमें यदि कोई जीवन है तो वह केवल कर्त्तव्य परायण होना ही है। उसे इसमें आनन्द मिलता है। इसके विना वह मृत्यु को अपने लिये उत्तम समझताहै। बहुत से मनुष्य किसी मित्र या अन्य परिचित मनुष्य का एक थोड़ासा काम करके यह समझ लेते हैं कि हमने अमुक पर अमुक प्रकार का उपकार किया अथवा हमने अमुक पर अहि-सान कर दिया यह उनकी अत्यन्त भूल है। उन को समझना चाहिये कि यदि एक मनुष्य भूंखके

समय भोजन करता एवं प्यास के समय पानी पीता है और जाड़े अथवा शीत के समय वस्त्र पहिन लेता है तो उसने क्या अपने पर किसी प्रकारका उपकार अथवा अहिसान कर दियाहै? कभी नहीं यह उसका धर्म्म था उसके किये विना वह जीवित नहीं रहि सकता है। प्यास में पानी पीना निद्रा में सो जाना भूंख में भोजन करना कपड़ा फट जाने पर नवीन वनवा लेना मित्रों का सत्कार करना बन्धुवों का एकत्रित होना यह सब जीवन यात्रा को पूर्ण करने के साधन हैं इन के विना कोई मनुष्य आपको जीवित नहीं कहि सकता। सङ्गम के विना मनुष्य एक पलभर नहीं व्यतीत कर सकता। पुस्तक कलम दवात कपड़ा मित्र बन्धु काग़ज़ घोड़ा हस्ति इत्यादि सब हमारे सङ्गम में सम्मिलित हैं इनके विना हमारा निर्वाह नहीं हो सकता अतएव हम अपने जीवन यात्रा के साधनों को यदि उत्तमता से बनाने का उद्योग करते हैं तो उन पर किसी प्रकार का उपकार नहीं किन्तु अपने कर्त्तव्य का पालन है जो कि

हमारे सब के लिये पृथिवी में पांव रखते ही नियत किया जाता है। यदि हम उस से च्युत होते हैं अथवा उसे किसी अन्य सांचे में ढालते हैं तो हम अपनी निर्बलता का प्रमाण देते हैं। जो मनुष्य इससे भागता है अथवा जी चुराताहै वह अपने मानुषी जीवन रूपी धन से दिवाला निकालता है उसका फिर विश्वास नहीं किया जायेगा।

कर्त्तव्य एक प्रकार का ऋण है हममें से प्रत्येक मनुष्य के लिये जो कि अविश्वास और धार्मिक दिवालियापन से बचना चाहताहै उसका उतारना स्वयं एक कर्त्तव्य है। अन्यथा यह असम्भव है कि एक मनुष्य अपने कर्त्तव्य का पालन न करता हुवा भी विश्वास भाजन बन सके। ऐसे मनुष्य शीघ्र ही अपना भीतरी दिवाला निकाल देते हैं।

जगत् में विचारशील मनुष्यों के लिये कोई काम इसयोग्य है कि उसे उत्तमता से कियाजाये तो वह कर्तव्य पालन है। जहां अन्य मनुष्यों

की गति नहीं होती कर्त्तव्य परायण मनुष्य वहां सुगमता से जा सकता है। जहां अन्य मनुष्योंको दुःख और कष्ट प्रतीत होता है कर्त्तव्य पालक आनन्द को अनुभव करता है। उस पर वहां कोई क्लेश अपना प्रभाव नहीं डाल सकता है। वास्तव में भय होता भी उसे ही है जो कर्त्तव्य शून्य होता है अपने धर्म्म में स्थित सब बलवान् होते हैं। अग्नि की एक छोटी सी ज्वाला जब तक जलती और दीप्त है तबतक शेर हाथी कोई भयानक पशु अथवा पक्षी उसके समीप नहीं आता। परन्तु जभी वह अपने धर्मका परित्याग कर देती अर्थात् प्रकाश शून्य हो जाती है शेर बाघा छोड़ च्यूंटियें भी पांव देकर चलती हैं उसका नाम उस समय अग्नि या ज्वाला नहीं रहिता किन्तु उसका नाम धूलि अथवा राख से बदल जाता है। इसी प्रकार जब तक हम अपने धर्म एवं कर्तव्य पालनमें तत्पर हैं तबतक संसार का कोई क्लेश हमको दुःखी नहीं करसकता और

जब हम कर्त्तव्य पालन से विमुख हुवे छोटे से छोटा काम भी आकर दवासकता है।

कर्त्तव्य पालन एक प्राकृत नियम है अतएव इसका पालन न करना मानों प्राकृत नियमोंका विरोध करना है। हम पीछे दिखा आये हैं कि प्राकृत नियमों के विरोधी का नाश करने को प्रकृति की संपूर्ण शक्तियें उद्यत हो जाती हैं। उसका एक२ अणु उसका विरोधी हो जाता है महाशय "हैनरी"का कथन है कि "संसार कुछ करने एवं कर दिखानेका स्थानहै" यद्यपि इससे विस्फुट शब्दों में यह प्रतीत नहीं हुवा कि'क्या' कर दिखानेका स्थानहै। परंतु हम अपने विचारानुसार कहिसकते हैं कि "संसार केवल धर्म्म एवं कर्त्तव्य पालन करने औरकर दिखाने का स्थान है"। जिस प्रकार प्राकृत शासन के वर्त्ताव में किसी समय और अवस्था विशेष की आवश्यकता नहीं होती इसी प्रकार कर्त्तव्य पालन के लिये भी किसी समय और अवस्था विशेष की कोई आवश्यकता नहीं है किंतु कर्त्तव्य पालन हमारा

स्वभाविक धर्म है जिस प्रकार भूंख पियास आदि हैं। हम जब कभी भी किसी स्वभाविक नियम को तोड़ने की इच्छा करते हैं तो हम को कष्ट होता है उसी प्रकार कर्त्तव्य पालन रूपी नियम तोड़ने वाला भी सुखी नहीं रहि सकता। ईश्वर ने हम को इसलिये मानुषी जीवन से सुसज्जित नहीं किया कि हम दिन रात शुभाशुभ संस्कारों में डूबे रहें किंतु हमारेलिये कुछ काम भी नियत किया है अतएव हमें उचित्त है कि हम उसको पूर्ण करने का उद्योग सदैव करते रहें।

जगत् एक नाटक के समान है हम सब इस नाटक के कार्य्य करता अथवा पात्र हैं अतएव हमें योग्य है कि जो २ काम हमारे लिये नियत किया गया है हम उसे सावधानी से करें इसका फल उत्तम होगा इससे आत्मा को शान्ति होगी।

हम सबको निश्चय करलेना चाहिये कि हम सब एक ही मानवी सभाके सभासद हैं और एक ही शासन के पालन के लिये उत्पन्न किये गये हैं यह बात दूसरी है कि हम अपनी सुगमता के लिये

उसके कुछ विभाग नियत करलेवें परन्तु वास्तव में वह शासन एक है। और वह यह है कि हमारी सत्ता दूसरों के लिये हो। स्वामी दयानन्दजी ने क्या उत्तम कहा है कि " प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में संतुष्ट न रहिना चाहिये किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये " यह अक्षर कैसे पवित्र हाथों से लिखेगये हैं वास्तव में उपरोक्त स्वामी दयानन्दकाःन समझना चाहिये किन्तु इसे प्राकृत नियम समझना चाहिये प्रकृति का शासन यही है जो कि ऊपर लिखा गया। इसीका दूसरा नाम सृष्टि नियम है जो मनुष्य इस का पालन नहीं करसकता अथवा करना चाहता उसे उचित है कि वह मानुषी सभासदी से प्रथक् होजाये।

हम दुःखी हैं परन्तु यह दुःख कहीं से भाग कर नहीं चिपट गया किन्तु हमारे अपने हाथ की खेती है। हमारी दशा उन काठकी पुतलियों की सी है जो मदारी के हाथ में होती हुई नाना प्रकार नाच नाचती है. मदारी ने उसकी एक और

को तारदवाई और वह उसी प्रकार नाचनेलगीं उन्हें किसी प्रकार का खेद नहीं होता लखों वर्ष उसी अवस्था में सन्तानपर सन्तान नचातीजाती है। परन्तु हमारे में और उन पुतलियों में कुछ भेदहै और वह यहहै कि उनका मदारी एक होता है और हमारे मदारी नाना हैं और वे हमारी भीतरी "वासनायें" हैं।ज्यूं २ हम इनकी गुलामी में अधिक दम भरते हैं त्यूं २ इनकी सवारी हमारे पर अधिक होती जाती है। इस प्रकार के कुसंस्कार हमारे सिरका मुकट होरहे हैं। इनसे जब तक हमारी मुक्ति नहीं होती हम अपने देश एवं जातिके लिये क्यो अपने लिये भी कुछ नहीं कर सकते और इनसे मुक्त होनेका केवल एक उपाय है और वह यह कि हम कर्त्तव्य कर्मों की धुनमें लगे रहें। जो मनुष्य कर्त्तव्य कर्मोंमें तत्पर होजाता है उसे जगत् की वासनायें कभी नहीं सतासकतीं हमारा काम यही है कि हम उन कामोंकी गवेषणा में लगे रहें जिनका करना कि हमारा कर्त्तव्य है। सब जगत् सुख के लिये जीता है और उसीकी

धुन में मग्न हैं परन्तु इसके बतानेवाले बहुत कम हैं कि वह कहाँ है? महात्मा सुकरात ने इसका क्या ही उत्तम उत्तर दिया है कि "वह कर्त्तव्य पालन में है"

हमारे में बहुत से ऐसे मनुष्य भी हैं जो अपनी योग्यता अयोग्यता पर विचार करते ही अपने जीवन का बहुतसा भाग व्यर्थ खोलेते हैं। "हम योग्य नहीं हमारी बातको कौन सुनेगा हम साधारण हैं अत एव लोग हमारी बातों को न मानेंगे" इत्यादि बहुत से संस्कार हैं जिनसे कि वे और हम व्यर्थ अपने आपको सताते और क्लेशदेते रहिते हैं। क्या कोई सेवक अपने स्वामी की आज्ञा से लगाहुवा किसी कार्य्य के न होनेपर कहिसकता है कि मेरा समय व्यर्थ गया। कदापि नहीं उस का धर्म यह है कि अपने स्वामी की आज्ञाका पालन करे न कि ननुनच करे स्वामी स्वयं उसकी योग्यता से परिचित है वह जानता है कि कौनसे कामको यह उत्तमता से कर सकेगा?। क्या एक च्यूंटी अपने आपको हस्तिके समान योग्य न मानकर अपने लिये अपना कार्य्य करने से रुकसकती है? क्या मधु

अत हमारे समान कलायन्त्र से मधु बनाने की योग्यता एवं शक्ति न रखने से अपनी स्वभाविक क्रिया द्वारा थोड़ीसी परन्तु हम सब से उत्तम मधु एकत्रितके स्थान चुपचाप बैठसकती हैं। सब कथन मात्र प्रत्येक शक्ति अपनी वर्त्तमान दशा के अनुसार अपना अपना काम कर रही है : हमें इन झमेलों में न पड़ना चाहिये हमारा समय सामान्य समय नहीं है कि बातों में खोदें अन्यथा भोजन में भी कमी की संभावना है। परमात्मा ने इस जगत् रूप नाटकके एक दृश्य हमको भी दिया है वह उत्तमता से जानता है कि हम किस २ कामकी योग्यता रखते हैं और क्या २ काम करसकते हैं। हमारा धर्म यही है कि हम इन वहानोंको छोड़ अपने नाटक को पूर्ण करें। हमें इस उलझन में पड़ने की कोई आवश्यकता नहीं कि हमारे काम का फल क्या है अथवा क्या होगा—किसी की दृष्टि में मान् होगा या नहीं। प्रत्युत उत्तम काम को उत्तम जानकर उत्तमता से ही करते जाना हमारा धर्म्म है। दुकानदार का यह काम है कि वह

अपनी दुकान को प्रत्येक वस्तु से सुसज्जित रक्खे चाहे कोई वस्तु ले या नले यदि आज किसी एक वस्तुके ग्राहक नहींआये तो यह नहीं कि कल उस वस्तुको निकालकर सजाना ही बन्द करदे क्याजाने आज ही उसका कोई ग्राहक मिलजावे उसका कर्त्तव्य यहीहै कि वह प्रत्येक वस्तुको निकालकर सजाये न कि एक दिन ग्राहकों के न आनेपर ताला लगा चुप चाप बैठजाये। भगवान् कृष्णका कथन है कि " अपने कर्त्तव्य कर्मों का पालन करना औरों के पालन से उत्तम है अपने कर्त्तव्य पालन में अपने जीवन की आहुती देदेना उस से भी उत्तम फल लाता है " जो मनुष्य कर्त्तव्य को दुःखदायी जान त्यागदेता है वह अपने लिये स्वयं दुःखदायी बनने का उद्योग करता है हमारे कर्तव्य एवं धर्मका सम्बन्ध हमारी वाणी से नहीं किन्तु बुद्धि हृदय और हमारे आदर्श सेहै। कर्त्तव्य एवं धर्म्म का पालन करनेवाला मृत्यु में भी आनन्द को अनुभव करता है उसे घर और बन दोनों समान होते हैं वह जीता भी जीता और मराभी

जीता एवँ धर्मच्युत लोक-परलोक दोनों में दुःखी है जीताभी मरा मरा भी मरा वह जीवन पवित्र है जो कर्त्तव्य परायण होता हुवा अपनी यात्रा को पूर्ण करके गया है उसने प्राकृत नियमों को अपना मित्र बना लिया उससे हँसता खेलता अठखेलियां लेता आनन्द पूर्वक स्वर्गका मार्ग लेता है।

'आत्मिक विषयक हमारा कर्त्तव्य'

"आत्मिक विचारों से शून्य मनुष्य लकड़ीका पुतला है" "उपनिषत्"

हम इस विषय को दो भागों में विभक्त करते हैं १ आत्मिक २ शारीरिक जिस प्रकार शरीरकी रक्षा के लिये नाना साधनों की आवश्यकता है उसी प्रकार आत्मिक रक्षाके लिये अनेक साधनों की आवश्यकता नहीं होती। किन्तु आत्मिक रक्षाके लिये केवल एक साधन की आवश्यकता है।

और वह सङ्गति है चाहे उत्तम पुस्तकों की हो अथवा भले मनुष्यों की दोनों का फल एक आत्मिक रक्षा एवँ उन्नति के साधन बतलाना है

संसार में वही मनुष्य जीसकता है जोकि विरुद्ध सामग्री को यातो अपने अनुकूल बनालेवे अथवा अपने लिये लाभदायक सामग्री स्वयं एकत्रितकर लेवे। जगत् का प्रत्येक पदार्थ क्षण परिणामी माना जाता है और यह सत्य है इसमें संदेह का स्थान नहीं जोकल था वहआज उसअवस्था में नहीं जो आज वर्त्तमान है कल वही भूतका नाम पायेगा और उसकी अवस्था में हम परि-वर्त्तन पायेंगे। कलजिस मित्रसे हम जिस अवस्था में प्रेमालाप कर रहे थे आज उस अवस्था में नहीं कर सकते क्योंकि वे क्षण ही जाते रहे उन का हमारे हाथों में आजाना अब हमारे आधीन नहीं रहा। हम स्वयं जो कल थे आज नहीं हैं नहीं कल होंगे। यह बात दूसरी है कि हमें तत्काल इन घटनाओं की प्रतीति न हो परन्तु यह सत्य है क्या आप कहि सकते हैं कि जिन सँस्कारों को लेकर आप कल सोये थे वे आज उसी अवस्था में विद्यमान हैं! नहीं क्योंकि उन में अज्ञात एवँ सूक्ष्म तया परिवर्त्तन है यह प्राकृत

नियम है इस को तोड़ने का किसी को सामर्थ्य नहीं है। हमारे जीवन का परिवर्त्तन भी इसी प्रकार का है जिसकी कि प्रतीति प्राय कम होती है। अत एव हमें उचित है कि हम सदैव किसी एक समय एकान्तमें बैठ अपने आप से पूछा करें अथवा यूंकि विचार किया करें कि आज हममें कितना परिवर्त्तन हुआ और हम उच्च कोटिकी ओर गये अथवा नीच कोटिकी ओर झुके। एक पाश्चात्य विद्वान् का क़थन है कि "हमारा जीवन एक प्रकारका खेल है" अत एव जीवनरूपी खेल के खेलते समय प्रति दिन देखते रहिना चाहिये कि आज क्याजीता और क्या हारा और हमारे गुण कर्म एवं स्वभाव में कितना परिवर्त्तन हुवा। हम परमात्मा के समीपगये अथवा और दूर हो गये किसी विद्वान्का कथनहै कि "यदि तुमप्रसन्न रहिना चाहते हो तो अपने इष्ट मित्रों के शुभ चरित्रों एवं गुणों पर विशेष विचार करते रहा करो" इससे हमें शुभ गुणो की प्राप्ति का अवसर मिलता रहेगा हम अपने आपको भी वैसा ही

बना लेगें विरुद्ध इसके जो लोग अपने मित्रों के उत्तम गुणों पर विचार न करके उनके छोटे २ अपगुणों काही ध्यान बांधे रखते हैं वे न केवल अपने आपको वैसाही बना लेते हैं प्रत्युत उससे भी नीचे गिर जाते हैं। क्योंकि उन्होंने अपने संस्कारों को दूसरी ओर जाने का अवसर ही नहीं दिया।

सँसार में एसे मनुष्य बहुत कमहैं जो कि दूसरे के अप गुणों को छोड़ गुणों पर ही दृष्टि देने वाले हों। या दूसरे के अपगुणों पर दृष्टि देने से पूर्व कुछ अपने आपकाभी विचार करने वालेहों। सु सँस्कार हमारे जीवन की नीव को न केवल स्वच्छ एवं परिपक्व करने वाले हैं किन्तु उसे सर्वाङ्ग पूर्ण जीवन बनाने वाले हैं। इसी प्रकार कुसँस्कार न केवल जीवन की नीवको खोखलाही करते हैं प्रत्युत उसका समूलोच्छेद करके छोड़ते हैं। जब एक सामान्य रूप से सँस्कार बिगड़ताहै तो वहां फिर समाप्ति नहीं हो जाती किन्तु मकड़ी के अण्डे के समान एक पर एक नये से नया आ

घुसताहै। अत एव हमें उचित है कि हम अपनी आत्मिक रक्षा के लिये सदैव कुसंस्कारों से बचते रहें। और अपनी सदाचारिक अवस्थाको सँभाले जोकि हमारे मान्य प्राचीनो की निधि थी।

प्रत्येक मनुष्य के लिये उसके पुरुषाओं की छोड़ी हुई दायादसे उत्तम और कोई वस्तु नहीं होती। यद्यपि जगत् में और भी ऐसे पदार्थ हैं जिनसे कि मनुष्य की चाल ढाल में उन्नति एवँ परिवर्त्तन विशेष हो सकता अथवा किया जा सकता है। परन्तु उसके लिये वाह्य सहायता की आवश्यकता अवश्य होती है विरुद्ध इसके अपने पुरुषाओं के सन्तानार्थ छोड़े गये संस्कार इतनी शक्ति रखते हैं कि उनके लिये किसी वाह्य साहाय की आवश्यकता नहीं होती किन्तु वे स्वयँ ही सन्तान की नस नाड़ी में प्रवेश करते रहिते हैं. तिसपर पुरुष भी वे कि जिनके सदाचार की धाक पृथिवी के निचले भाग तक पहुंच चुकी हो जिनका सत्य भाषण दूसरों का दृष्टांत बन गया हो जिनकी सूक्ष्म दृष्टि प्रकृतिके अणु २ की नहीं किन्तु परमाणु

तक की खबर रखती हो। ऐसी जाति के लिये उचित है कि वह अपने आदर्श के लिये अपनी दायादकी सुधले एवँ उसे फिरसे जल सिञ्चनकरे।

आत्मिक जीवन स्वयँ एक जीवन है। जो मनुष्य इसकी यथावत् रक्षा नहीं करता वह शेष दोनों (सामाजिक और शारीरिक) जीवनों से हाथ धो लेता है। क्योंकि यही शेष दोनों जीवनोंका मूल है। यदि वे फल हैं तो यह उनकी पवित्र वेल है यदि वे प्रकाश हैं तो यह अपनी अवस्था में सूर्य्य है अत एव उसकी रक्षा मानों इन दोनोंकी रक्षा करना है। इसका एकमात्र साधन यह है कि हम नेक सज्जनों की सँगति से लाभ उठायें। अथवा उन पुस्तकों का अनुशीलन करें जोकि हमारी आत्मिक व्यवस्था करने में विशेष सहायता देने वाले हों। जैसे कि उपनिषदें यह शब्द एक उपलक्षण मात्र है। इस प्रकारकी पुस्तकें कहीं भी किसी भी भाषा में क्यों न हो लाभ वही है एक रत्न सोने की डबिया में हो अथवा पीतल की में मूल्य और गुणों में कुछ परिवर्त्तन नहीं

होता । आडम्बर में तो कदाचित् कुछ कमी आ जाये परन्तु विचार शील महात्मा इसकी इतनी परवाह नहीं करते ।

इसका दूसरा भाग शारीरिक रक्षा है

शारीरिक रक्षा से हमारा अभिप्राय नीरोगता है। सबसे पूर्व हमें यह देखना चाहिये अथवा उस मनुष्य की तलाश करनी चाहिये जो कि रोग रहित हो तो हमें पता लग जाये कि नीरोगता इस वस्तु अथवा अवस्था का नाम है । हमारे देश में कोई ऐसा दिखाई नहीं देता जो कि अपने आपको रोगी कहिता हो और नीरोगी भी कोई दिखाई नहीं देता किसी से पूछो उत्तर मिलेगा मैं वैसे तो नितान्त नीरोग हूं केवल कभी२ ववासीर की शकायत होजाती है। दूसरा कहिता है केवल ज़रा सिर दरदसी होजाती है अन्यथा कोई रोग विशेष नहीं है इत्यादि। इनके सामने शिर पीड़ा और ववासीर आदि कोई रोग विशेष नहीं है। अस्तु । इस प्रकार के संस्कार यद्यपि हृदय को थोड़ी देर के लिये

तो ढारस देसकते हैं परन्तु शारीरिक व्यवस्था पर किसी प्रकार का प्रभाव विशेष नहीं डाल सकते।

हम लोग एक प्रकार की ही आपत्तियों से नहीं घिरे हुवे किन्तु चारों ओर से इनका घेरा है जिधर जाओ दुःख और क्लेश ही अनुभूत होता है। घरों की दशापर दृष्टि दो, स्कूलों कालिजों पर ध्यान दो भाव प्रत्येक स्थान में हम आपत्तियों में घिरे ही दृष्टि आते हैं। यह सब आपत्तियें एवं क्लेश परमात्मा की अथवा प्राकृत नियमों की ओर से ही भेजी नहीं गयी किन्तु इनमें से आधी से अधिक हमारी अपनी उत्पन्न की गयी हैं अर्थात् हमारे हाथों से ही उन की उत्पत्ति है। या यूं समझना चाहिये कि हमारी भूलोंका फल रूप हैं जोकि प्राकृत नियमों के अनुसार उचितही था। एक अमरीकन विद्वान् का कथन है कि "जितने अपने हाथों से नाश हुवे और होतेहैं उतने शत्रुवों की सेना सांसारिक रोगों से नहीं" इस पर भी विचित्रता यह है कि इस विनाश का कारण भी कुछ मन्द दृष्टि से नहीं देखा जाता किन्तु पहिले

२ तो अत्यन्त प्रिय और लाभ दायक प्रतीत होता है । हम उसे सुख नाफ़ जान करना ही उचित समझते हैं । वर्तमान युवकों में जितना सदाचारिक विप्लव हुवा है इतना कदाचित राज परिवर्तनों में न हुवाहो । अथवा हमने देखा नहीं । इसलिये ऐसा प्रतीत होताहो अस्तु इसमें सन्देह नहीं कि वर्त्तमान काल में जितनी भी आत्म हत्यायें मनुष्य ने अपने हाथों की हैं उनमे से ९० फीसदी शिक्षा प्रणालीके शिर हैं । चाहे वे किसी भी दशा में क्यों न हुई हों । क्या वर्त्तमान आत्म हनन की संख्या में ऊपरोक्त संख्या उन युवकों की नहीं है जोकि अपनी मृत्युकी नीव प्रथम ही डाल चुके थे । और अत्यन्त प्रेमके साथ ? इसमें किसी मनुष्य को भी इनकार नहीं होसकता विस्तार छोड़ हम थोड़े से जितलाना चाहते हैं कि यह सब दोष वर्त्तमान शिक्षा प्रणाली के हैं । वर्त्तमान शिक्षा का हमारे आत्मासे कोई सम्बन्ध नहीं और जब तक न होगा इन दशाओं घटनाओं में कमीकी आशा करना आकडे आमोकी अभि-

लापा है। इसका उपाय विना इसके और कुछ नहीं कि शिक्षा प्रणाली को ठीक किया जावे। बच्चों की प्रथम से ही उन पुस्तकों पत्रों मनुष्यों से रक्षा की जावे कि जिनकी संगति से इस प्रकार के प्रभाव उत्पन्न होते हों। हम जगत् में ऐसेही विना किसी सामग्री के आतेहैं कि दूसरों के अनुकरण का अभ्यास पूर्ण रूप से हमारे अन्दर घुसजाताहै। अत एव सन्तान इसके आधीन है कि उसकी सर्व प्रकार से रक्षाकी जावे ताकि वह अपने सम्बन्ध में प्रत्येक प्रकार से उन्हीं प्रभावों का ग्रहण करे जोकि उसके आगामि जीवन के लिये लाभ दायक है। हम इस वात का विचार करलेते हैं कि अभी बच्चा है क्या सीखेगा परन्तु वालक का हृदयफोटो के शीशे के समान होताहै जिसमें कि दूसरे का चित्र झटपट एक क्षणभर में खिंचजाता है। वालक को अपनी वास्तविक अवस्था का इतना सौन्दर्य प्रिय नहीं होता जितना अनुकरण प्रिय होताहै वह ज़रा जरासी चेष्टाओंका ध्यान रखताहै क्योंकि उन्हें उसने स्वयं करना होताहै। अत एवं

उचितही नहीं किन्तु धर्म है कि उनकी रक्षा की जाये। शिक्षाका प्रवन्ध उत्तम कियाजाये सामयिक शिक्षा के साथ २ आत्मिक और शारीरिक शिक्षा पूर्ण रूप से दीजाये इससे न केवल यह युवावस्था को ही सम्भाल लेगा प्रत्युत सामाजिक जीवनकी यात्रा करने को भी योग्य होजायेगा क्योंकि उस का हृदय आत्मिक शिक्षा से भरपूर होगा।

हमें याद रखना चाहिये कि वीर्य्य एकरत्न है जो कि माता पिता की ओर से हमको दायाद में मिला है जो मनुष्य इसके साथ उतना प्रेम न करेगा जितना कि वह अपने साथ करताहै जीता नहीं रहि सकता।जो मनुष्य प्राकृत नियमों के विरुद्ध उसके विध्वन्स करने की चेष्टाभी करता है प्राकृत नियम न केवल उसका विरोध ही करते हैं किन्तु, अपनी संपूर्ण शक्ति रूप सेना से उस पर आक्रमण कर देते हैं और उसके टुकड़े २ करके छोड़ते हैं उसकी संपूर्ण अवस्था आनन्द प्रसन्नता आदि का साथ ही अन्त्येष्टि कर्म कर देते हैं।

स्वास्थ्य अथवा नीरोगता कि जिसका विवेचन

होरहा है सबसे पहिली नीव वीर्य्य रक्षा है शेष साधन इसके पीछे हैं। जो मनुष्य इसकी रक्षा नहीं कर सकता वह अन्य किसी साधन से भी अपने आपको नीरोग अथवा बलवान् नहीं बना सकता यह प्राकृत नियम है कि मूलसे ही वृक्षकी उन्नति एवं रक्षा होती है। इसकी रक्षाका केवल मात्र साधन उत्तम औरपवित्र शिक्षा है एक जर्मन् विद्वान् का कथनहै कि "एक कुकर्मके पीछे दूसरा कुकर्म सीधे विना किसी रोक टोक के सुगमता से आसकता है" जब यह दशा हैतो हम नहीं कहि सकते प्रति दिन नहीं प्रतिक्षण की कुकृति से मनुष्य किस प्रकार बचसकता है विना इसके कि यातो बन्द भीतर ही बैठा रहे अथवा उसके आत्माको भीतरी और सदा चारिक शिक्षा द्वारा इतना निश्चल किया जाये कि वह उस अवस्था में कमल मय होकर जल में निवास करे। वीर्य्य रक्षा से उतरकर हमारे स्वास्थ्य का सम्बन्ध हमारे भोजन वस्त्र एवम् संस्कारों के साथ है। वरन चूंकि वीर्य्य रक्षा का सम्बन्ध भी शिक्षा से उतर कर इनके ही साथ है

हम जो कुछ खाते पीते पहिनते हैं उनका प्रभाव केवल हमारे शरीर पर ही समाप्त नहीं होजाता किन्तु उसका एक विशेष भाग हमारे संस्कारोंके पालनमें नियत होताहै। अथवा इसप्रकार समझिये कि हमारे संस्कारोंकी उन्नतितो शिक्षा और सङ्गति से होती है परन्तु उनका पोषण इनही पदार्थों पर निर्भर है जिनका कि ऊपर विवर्ण हुवाहै। हमें किस प्रकार के भोजन करने चाहियें ? वस्त्र कैसे हों इन बातो पर विचार अथवा अधिक विवेचन हम नहीं कर सकते क्योंकि हमारे पास समय बहुत थोड़ाहै अतएव इनका उत्तर हम जर्मन् के एक प्रसिद्ध वैद्य 'कोहनी''के कुछ थोड़ेसेशब्दोंमें ही लिखदेतेहैं वह यह कि'प्राकृत अर्थात् अत्यन्त सादे भोजन हैं जो कि जीवनशक्तियोंको पुष्टकरने वाले हैं और अपनी वास्तविक दशा में हमारी रुचि अपनी ओर खींच सकते हैं '' हमें सदैव एकाकी सोना चाहिये और प्रत्येक समय उत्तम सँस्कारों के एकत्रित करने में उद्यत रहिना चाहिये अकेला सोने में कितने लाभ हैं इनको वह मनुष्य सुगमता

से जान सकता है जिसने कि इस के अभ्यास से लाभ उठाया है। दूसरे उत्तम सँस्कारोंका अभ्यास हमारे जीवन में उन घटनाओं को नहीं आने देता जोकि हमारे विनाश का हेतु भूत है।

"पितृ विषयक हमारा कर्त्तव्य"

"आचार्य्य ब्रह्म की मूर्त्ति है पिता प्रजापति की माता पृथिवी की मूर्त्ति है और भ्राता अपने आत्मा की" "भगवान् मनु" जी।

"जिसने अपने माता एवं पिता की आज्ञा का यथावत् पालन नहीं किया उत्तमथा वह जगत् में न आता" 'श्री रामचंद्र जी'

"जितना माता से संतान पर उपदेश और उपकार होता है उतना अन्य किसी से नहीं" 'स्वामी दयानन्द जी'

हमारा दूसरा कर्त्तव्य हमारे अपने प्यारे माता पिता के विषय में है। जिनकी दयासे कि हम अपनी वास्तिक अवस्था को पाकर संसार के पदार्थों से लाभ उठाते एवं परम पदार्थ मुक्ति

के अधिकारी बनते हैं। वास्तव में उतनी शिक्षा हमको आचार्यसे नहीं मिलती जितनी कि अपने प्यारे पिता से संभव ही नहीं किन्तु मिलती है। परन्तु जितनी और जिसप्रकार की शिक्षा हम को अपनी प्रिय पूज्य माता से मिलती है उतनी और उस प्रकार की शिक्षा देने को किसी का भी अधिकार नही अथवा यूं कि किसीका सामर्थ ही नहीं कि देसके। हमारे जीवन रूपी कल के जितने पुरज़े उस के पास होते हैं और किसी के पास नहीं होते। उस के अपने आधीन है कि वह हमें क्या और कैसा बनाना चाहती है?। हम विषयान्तर में आगये हैं जिसका पूरा करना हमारे इस थोड़े से समय के बाहिर है। हमारा विचार यह है कि माता पिता का ऋण हमारे पर इतना है कि हम इस जन्ममें दे नहीं सकते। जो मनुष्य अपने आपको किसी उत्तम मार्ग में ले जाना चाहता है उसका पहिला काम यह है कि माता पिता और आचार्यकी आज्ञाका पालन करे। इस से उत्तम मनुष्यों की आज्ञा के भङ्ग

करने का अभ्यास न पड़ेगा परन्तु इस से यह न समझ लेना चाहिये कि इस अभ्यास को पूर्ण करके अब हमारा और कुछ काम नहीं रहा किन्तु उसके पश्चात् अपनी अर्थात् अपने विवेक की आज्ञा के पालन का अभ्यास डालना चाहिये। और यह शिक्षा हमारे जीवन में पूर्णतया चली जाती है। हमारी बुद्धियों को तत्त्व दर्शक एवं सूक्ष्म बनाना हमारे आचार्य के आधीन होता है परन्तु हमारे पर वे किसीप्रकारका शासन नहीं करसकते हैं। हमारे आत्मा का यथा रुचि बना लेना हमारी माता के आधीन होता है। वह मनुष्य कैसा अभाग्य है जो कि अपने मातापिताके प्रेम से लाभ नहीं उठा सकता. वह मनुष्य इस से भी नीच है जिसने अपने नेत्रों के सामने उन को दुःखी देख स्वयम् सुखी होने की चेष्टा करता है। माता एवं पिता के समान जगत् में स्वजन अथवा बन्धुका मिलना कठिनही नहीं किन्तु असम्भव है। पुत्र खेलता एवं धूलि से लिप्त घर आता है माता देखकर प्रसन्न हो जाती है वस

कों नस नाड़ी में दुग्ध उछलने लग जाता है। हमें उस समय के प्रेम याद नहीं जो कि संसार में पांव रखने से कुछ दिन पीछे से हमारे साथ कियेगये थे। परन्तु हम उनकी सीमा लगासक्ते हैं कि जिस प्रकार से हम अपनी नन्ही और छोटीसी संतान के साथ प्रेम करते हैं। उस समय हमारे साथ कदाचित् इससे अधिक कियेगये हों। परन्तु फिर भी उसकी कई प्यारी२ बातें हा थ का लाड़ इत्यादि ऐसीबातें नहीं जो हम नितांत भूल गये हों यदि हम भूल गये हैं तो हम नितांत कृतघ्न हैं। असार संसार के अन्दर (जिस में कि कोई साथी नहीं किसी से परिचय नहीं अपनी रक्षा का साधन भी अपने पास नहीं) पांव रखते ही हमारी प्राकृत आवश्यकता को यदि किसीने प्रेमपूर्वक और आनंद सेपूर्ण किया था तो वह हमारी प्रिय माता थी। उस समय दूसरे की शक्ति न थी कि हमारी कुछ दिन भी रक्षा कर सके। ऐसी अवस्था के होने पर भी यदि कोई अपने नेत्रों के सामने उन्हें दुःखी देख

सकता है तो निश्चय जानिये कि ऊपर से मनुष्य प्रतीत होता हो परन्तु हमें उसके मनुष्य होने में सन्देह है। सँसार के सँपूर्ण मित्र अमित्र होसकते हैं भाई भाई का शत्रु हो सकता है परन्तु आज तक कहीं माता अपने पुत्र की शत्रु हो ऐसा दृष्टान्त नहीं मिलेगा। यदि कहीं मिला हैं तोवह दृष्टांत दृष्टांत ही रहा है और रहेगा। बड़े बड़े अपराधों को क्षमा करके पुत्रका मस्तिष्क चूमना केवल इसी के हिस्से में आया है। पुत्र कितना भी दुराचारी हो चोर हो जार हो परन्तु माता की दृष्टि में वही पुत्र है जो कि उत्पत्ति समय में था। पुत्र ने हत्या की है उसे प्राण दण्ड की आज्ञा है लोग उसे घृणा से देख रहे हैं निंदा कर रहे हैं पुत्र फांसी पर लटकाया जा रहा है परन्तु माता है कि बराबर शिर चूम रही है और अन्त तक उसे निर्दोष सिद्ध कर रही है। इस प्रकार के माता के उपकार सँतान कभी नहीं भूलसकती। यदि वह इतनी हतभाग्य है तो उसे प्राकृत नियमानुसार सन्तान कहिनाही पाप है।

जगत् में यदि कोई सत्कार का पात्र है तो उसमें सबसे पहिला नाम माता का है उस मनुष्यसे उत्त भाग्यवान् कौन है जिसके माता पिता जीते हों। जिसे इस अवस्था में भी रात्रि को घर उन्हें देखने का अवसर मिलता हो जिसे अपनी जीवन यात्रा में उन से सम्मति लेनेका सौभाग्य हुआहो

उसका जीवन धन्य है उसे अपने आपको अहो भाग्य समझना चाहिये। माता पिता की विद्यमानता पुत्र के लिये फिरभी वैसी ही आनन्द वर्धक है जैसी कि बाल्यावस्था में थी। माता की नाड़ी में जितना प्रेम ईश्वर ने रक्खा है उतना किसी में नहीं माता का जीवन प्रेमका पुतला है। माता! तू धन्य है तेरी दया और कृपा से हम संसार में इस अवस्था का अनुभव कर रहे हैं तू हमारी प्रकृति है सचमुच जैसे कारण विना कार्य्यकी उत्पत्ति नहीं वैसे ही तेरे विना हमारा जीवन व्यर्थ है तू सब के लिये पूज्य है जो सन्तान सच्चे हृदय से तेरी उपासना करेगी उसे संसार में कोई कभी न सता सकेगा तू पृथिवी है साक्षात देवी है तेरे उपा-

सक को कष्टका मिलना कठिन है तेरा सत्कार ही मेरे लिये कल्याण कारक है तेरा आशीर्वाद हार्दिक आशीर्वाद है।

देश विषयक हमारा कर्त्तव्य

इस समय देशसे हमारा अभिप्राय उस स्थान से नहीं है जहां कि हमारा निवास अथवा स्थिति है प्रत्युत देश से हमारा भाव उस पवित्र भूमि से है उस दयालु माता से है कि जिन के गर्भ में हमारे पुरुषाओं की अस्थियें उनके नाम निवास-स्थान हैं जिसके स्तनोंसे हमने और हमारे वृद्धोंने मरण पर्यन्त दुग्ध पान किया है वह वास्तव में प्रत्येक मनुष्य के लिये अपनी माता के समान है। उसका सदाचारिक धर्म है कि वह जब तक जीता है जब तक उसके शरीर में श्वासोंकी गता गति है अपनी इस प्रिया माताके आदर सत्कार में कमी न आने दें। किसी विद्वान् का कथन है कि " अपनी मातृ भूमि से तुमको उतना प्रेम नहीं होना चाहिये जितना कि तुम्हारा अपने

आपसे है प्रत्युत अधिक" जिस मनुष्य का पवित्र हृदय अपने देश की उच्च संस्कारों रूपी सम्पत्ति से मालामाल हो गया है वह निस्सन्देह दूसरों की अपेक्षा अधिक आनन्दित और स्वतंत्र है। ऐसे मनुष्य कहीं भी क्यों न हों आनन्द और प्रसन्नता का ही अनुभव करते हैं।

जिस प्रकार हम अपनी माता से उत्पन्न होते दुग्ध पीते एवं उसकी गोद में आनन्द लेते हैं वही दशा हमारी मातृ भूमि मयी जननी की है अत एव उससे अधिक और कौन पापी होगा जो इसके सत्कार मान एवं उन्नत करने में अपने पवित्र जीवन को सफल न करे। बदी का सामना करने से सत्कार और नेकी एवं सचाई का विरोध करने से विनाश होता है यह प्राकृत नियम है इससे कोई भी इनकार नहीं कर सकता जिस प्रकार वास्तविक माता का आदर सत्कार एवं सेवा हमारे धर्ममें प्रविष्ट किया है उसी प्रकार अपनी मातृ भूमिकी सेवा आदिका भार हमारे शिरों गर्दनों और हृदयों पर धरा गया है। जिस

भी भूमि में किसी का जन्म हो और जल वायु का भक्षण करता हो उसी पवित्र भूमि की रक्त उसके भीतर निवास करती है अत एव उसका धर्म होता है कि वह अपने जीवन को स्थिर रखने के लिये उसके मान सत्कार एवं उन्नति मय संस्कार उसके हृदय में संगठित हों। हमें यह न समझना चाहिये कि हमारे जीवन उन्नति मान सत्कार एव रक्षा आदि का हमारी मातृ भूमि से कुछ सम्बन्ध ही नहीं ऐसा समझ लेना न केवल भूल है वरन दुर्भाग्य और मृत्यु का चिन्ह है प्रत्युत हमारा जीवन देश स्थितिपर है हमारा मान सत्कार देश के मान सत्कार के साथ अभेद रूप से है। हमारी उन्नति देशकी उन्नति से भिन्न नहीं यदि कोई भिन्न देखता अथवा मानता है तो वह सचमुच भीतरी नेत्रों से नितान्त अन्धा और शून्य है वरन अपनी सत्तासे भी परिचित नहीं है। हमारी रक्षा का हमारे देश के साथ ऐसा ही सम्बन्ध है जैसा कि शरीर का प्राण वायु से है। कोई मनुष्य देश को निर्धन करके स्वयं

धनवान् नहीं बन सकता है। यदि कोई होना चाहता है तो सच मुच देश द्रोही और हत्यारा है। हमारा हमारे प्यारे देश से वही सम्बन्ध समझना चाहिये जो कि हमारे शरीर का सम्बन्ध हमारे ही नाना अङ्गों से है क्या कोई शरीराव यव शरीर का विध्वन्स करके अपनी सत्ता को स्थिर करसकता है। क्या शरीर विध्वंसके साथ ही उस अवयव का विध्वन्स न होगा! अवश्य होगा इस प्राकृत नियम को तोड़ने वाला पृथिवी भर में कोई नहीं वरन देवता भी इसके तोड़ने में असमर्थ हैं। देश की सँपूर्ण सामग्री उस मकान का साहश्य रखती है जिसके गिरने बननेका भार उसकी अपनी नीव पर होता है यदि उस स्थान की नीव उत्तम और स्वच्छ है उसमें उत्तम स्वच्छ एवँ पक्की ईटें लगाई गयी हैं तो निसन्देह वह मकान चिर स्थायी है अन्यथा उसे उसी में से गन्दी मट्टी निकलकर उसका विध्वन्स करदेगी। उसके कोने २ में से दीमक निकल कर उसकी सामग्री को चाटलेगी। इसी प्रकार देशकी नीव

में यदि उत्तम मनुष्यों का सञ्चार है देशकी उन्नति में यदि उत्तम एवं स्वच्छ वुद्धियें विचार में प्रवृत्त हैं तो उसकी उन्नति में किसी को भी सन्देह नहीं हो सकता अन्यथा उसके मध्य मे ही प्रचुर दीमक उत्पन्न हो सकती है। यदि शरीर के अवयव सुन्दर है तो शरीर के सौन्दर्य में क्या सन्देह है! यदि शरीर के अवयव उन्नत एवँ दृढ हैं तो शरीर की दृढता में सव सहिमत हैं। हमारा देश कभी २ स्वर्ण भूमि के नाम से पुकारा जाता था जिसको कि आज यदि हम चनाभूमि कहें तो भी मूल मानी जायेगी क्यों कि वेभी वहुतायत से उत्पन्न नहीं होते। इस समय देशको छोड़ हमारी अपनी दशा अकथनीय है। हमें अपने लिये कोई मार्ग प्रतीत नहीं होता कि जिसपर चलकर हम सुगमतासे जीवन व्यतीत कर सकें। हमारी दशा इस समय उस युवक कीसी है कि जिसके हृदय में उमङ्गों का तो नितान्त अधिक सँचार हो। आत्मिक अवस्था उतनी ही क्षीण हो कि जितना वह उन्नत

सँचार है। परन्तु वास्तव में यह आत्मिक निर्बलता सुकरात के कथनानुसार "प्रतीति मात्र" ही है परमात्मा ने जितनी शक्तियों का सञ्चार हमारे हृदय में किया है उतना शरीर में नहीं। मनुष्यका हृदय उसके सँस्कार वह बलवान् हैं कि कभी उनके उच्छलन (उबाल जोश) को वह स्वयँ सहन नहीं कर सकता। हम देखते हैं एक मनुष्य अत्यन्त प्रसन्नता से खड़ा है आनन्द मय वार्त्तालापहोरहा है सहसा घर से तार आया है उसमें लिखा है कि 'तुम्हारा बेटा मर गया,, अब उसके भीतर की कल घूम गयी है अब न तो उसमें वह आनन्द है जो एक घड़ी पूर्व था न प्रसन्नता है न जोश है सब काफूर हैं। इसी प्रकार चिन्तातुर मनुष्य को यदि कोई हर्ष जनक समाचार सुना दिया जावे तो उसका मुख खिल जायेगा उसके भीतर की कलें जोकि सबकी सब चिन्तारूपी खेलनमें घूम रही थी अब वे प्रसन्नताकी ओर झुक गयी हैं। हमारे शरीरों का निर्बल एवम् बलिष्ट बनालेना हमारी शक्तियों के आधीन है और हार्दिक कलाओंकी कुञ्जी हमारे

अपने पास है। हम जब और जिधर चाहें अपने हृदय गत शक्तियों को घुमाकर ले आसकते हैं। दैशिक उन्नति एवं प्रभुताका प्रायेण भार इन्हीं शक्तियों पर होताहै। एक वृद्ध यूनानी ने अपने एक स्वदेशी युवक को जोकि नाना आपत्तियों से पीड़ित वनमें रुदन कर रहा था क्या ही उत्तम शिक्षा की थी कि "बेटा देश की उन्नति एवं उस के सुधार के लिये बाह्य सामग्री की कोई आवश्यकता नहीं यदि आवश्यकताहै तो केवल इस बात की है कि तू एक बार अपने हृदय को हिलादे और उसे सोये को जगादे।

संपूर्ण देश अपने आप जाग जायेगा,, वास्तव में यह ठीक है मनुष्य का हृदय सब शक्तियों का पुञ्ज है उसके यथावत् होजाने पर शेष पदार्थ स्वयं यथावत् होजाते हैं। हमारा देश हमसे प्रथक् नहीं कहा जासकता किन्तु हमारे संघात का नामही देश है। अत एव हमें देश के साथ वास्तविक रूप से प्रेम करना चाहिये। प्राकृत नियमानुसार हमारा सबका अधिकार है कि हम सब जिस प्रकार से भी

संभव हो अपने प्यारे देश एवं मातृ भूमि के लिये उन्नति एवं सुधारके मार्ग की गवेषणा करें। और यही समझें तथा निश्चय करें कि देश का जीवन हमारा जीवन आधार एवं प्राण भूत है। इसके बिना न तो हम जीवित रहसकते हैं और नहीं हम अपनी वास्तविक दशा को उन्नत कर सकते हैं।

प्रकृति का एक २ अणु उच्च स्वरसे पुकारता है कि अपने देशकी प्रेम मयी ज्वाला प्रत्येक मनुष्य के अन्दर ज्वलित होनी चाहिये। वह मनुष्य कैसा भाग्यशाली होगा जिसके हृदय में यह शब्द समाये हुवे होगें कि "प्रत्येक मनुष्यकी उन्नति उसके प्यारे देशकी उन्नति पर समाप्त है प्रत्येक मनुष्य का जीवन मान सत्कार एवं आनन्द उस की सच्ची एवं पूज्य माता मातृभूमिके जीवन मान सत्कार एवं आनन्द पर निर्भर है,,।

"जाति विषयक हमारा कर्त्तव्य,,

"जगत् में यद्यपि और भी बहुत से कष्ट हैं परन्तु सब से अधिक जाति अपमान है,,

"भगवान् रामचन्द्रजी,,।

जो मनुष्य अन्यायी एवं जाति विध्वंसक है तथा प्राकृत नियमों का विरोधी है उसका दण्ड मृत्यु है "भगवान् युधिष्टर,, ।

"जन्ममरण मय जगत् में सभी आते जाते हैं परन्तु वास्तव में जन्म उसीका समझना चाहिये कि जिसके जन्म से जाति की पूर्ण रूपसे उन्नति होती है विष्णु ।

जिस प्रकार एक अवयव अपने शरीर रूपी संघात से प्रथक् होकर स्वयं कुछ नहीं कर सकता प्रत्युत व्यर्थ है उसीप्रकार एक मनुष्य अपनी जाति से प्रथक होकर स्वयं कुछ नहीं करसकता प्रत्युत व्यर्थ है । जिस प्रकार एक शरीरावयव शरीर का नाश करके स्वयं जीता नहीं रहि सकता उसी प्रकार एक मनुष्य भी जाति विद्रोह करके यह मत समझले कि मैं जीता हूं अथवा जीता रहिसकता हूं कदापि नहीं यह उसकी भूलही नहीं किन्तु मूर्खता है । जातीय सुख के साथ हमारा सुख ऐसा ही संगठित है जैसे कि शरीर अपने अवयवो के साथ । यदि जाति विपद ग्रस्त है तो हमारा शिर

आपत्ति से कुचला जायेगा। यदि जाति में किसी प्रकार का विप्लव है तो हम उससे बच नहीं सकते जातिका आनन्द हमारा अपना आनन्द है जातीय सुख हमारे लिये है उसकी उन्नति हमारी उन्नति के साथ अभेद रूप से है। उसका सत्कार हमारा गौरव है उसका अपमान हमारा अपमान है। वह मनुष्य कैसा भाग्यवान् है जिसका यह विचार है कि "अपनी जातिके लिये उत्पन्न किया गया हूं,, जो मनुष्य जाति की उन्नति एवं भलाई में आलसी उसकी आपत्ति में सम्मिलित नहीं होता सच जानिये वह अपने आनन्दसे भी वञ्चित रहेगा

यह जगत् एक प्रकार का प्लेट फार्म है इस पर खड़े होकर केवल एक शासन का उपदेश करना प्रत्येक मनुष्य का धर्म है और वह यह कि हम अपने लिये नहीं किन्तु दूसरों के लिये जीने का उद्योग करें जीवन प्राप्ति की कुञ्जी यही है आनन्द का भण्डार इसीसे खोला जासकता है जगत् में उससे अधिक स्वार्थी पापी एवं हत्यारा और कौन है जो अपने आपको केवल अपने लिये ही समझता

हैं। ऐसा मनुष्य पाताल छोड़ आकाश में क्यों न चला जायें सुख नहीं पासकता क्योंकि ऐसे मनुष्यों की कोई आवश्यकता नहीं होती प्रत्युत पृथिवी उसके उठाने से दुःखी है। इस प्रकार के मनुष्यों को सोचना चाहिये कि यदि तुम्हारे समान जल वायु पृथिवी घोड़ा गाय आदि प्रकृति के संपूर्ण पदार्थ यही नियम करलें जो कि तुमने किया है तो क्या तुम जीवित रहि सकते हो या नहीं यदि नहीं तो कृपया इन नीच संस्कारों को निकाल अपना लक्ष बनालेना चाहिये कि 'हम अपने लिये नहीं किन्तु दूसरों के लिये जीते हैं,, इसी लक्ष में आनन्द एवं सुख की प्राप्ति है क्योंकि सभीका यही लक्षहोगा दूसरोंका कष्ट देखकर जिसके हृदयपर किसी प्रकार का प्रभाव नहीं होता उससे किसी प्रकार की आशा रखनी व्यर्थ है। जातीय अपमान से अधिक संसार में कोई अपमान नहीं गिना जासकता जो मनुष्य अपमान का सहन करसकता है समझलो उसके भीतर का आत्मा मट्टी का बना हुआ है। क्या वह मनुष्य भी अपने आप को

मनुष्य कहिने का अधिकारी है जो कि केवल अपने पेट और स्वार्थ केलिये जाति विद्रोह करने पर उद्यत हो जाये ? ऐसे मनुष्य अपनी ओर से तो अपने साथ प्यार करते हैं और समझते हैं कि हम बड़े दाना एवं चालाक हैं कि हम अच्छा कमा लेते हैं परन्तु वास्तव में वे अपने मूलोच्छेद एवं विनाश की सामग्री एकत्रित करते हैं । वह दिन आजाते हैं कि गलियोंमें कुत्तों की मृत्यु मरते दृष्टि आते हैं उस समय कोई उन से पूछे कि कितना अपने साथ प्यार किया और उसका क्या फल हुवा ?

किसी भी जाति को उतना अन्य शत्रुवों से भय नहीं होता (नहीं होना चाहिये) कि जितना उसे अपने गर्भ से उत्पन्न किये आत्मीय जाति विध्वंसकों से होता है । ये बगल के बिछुवे के समान अंदर बैठेर ही डङ्क मार तड़पा देते हैं । ऐसे पापियों से प्रत्येक को भय होता है और होना चाहिये । अतएव आवश्यकता है कि ऐसी मनुष्याकार व्यक्तियों से अपने आपको बचाया जाये ।

जातीय उन्नति हमारी शिक्षा पर निर्भर है जिस प्रकार की शिक्षा हमको मिलेगी उसीप्रकार की जातीय उन्नति में हमारी सहायता होगी शिक्षा से मनुष्यों का सदाचार पवित्र होता है एवं सँस्कार उत्तम बनते हैं जिससे कि जातीय उन्नतिकी उमंगें हृदय में उत्पन्न होती हैं। शिक्षा से हमारा अभिप्राय उस शिक्षासे नहीं है जो कि कालिजों स्कूलों आदि में दासत्व वृत्ति के लिये दीजाती है। नहीं। किन्तु जातीय शिक्षा। लोकमान्य लाजपति जी ने एकबार व्याख्यान में क्या उत्तम शब्द कहे थे कि "उस जाति की उन्नति के दिन अत्यन्त समीप हैं जिसके हाथ में उसकी संतान के हृदय हैं" इस को हम दूसरे शब्दों में इस प्रकार से कहसकते हैं कि "वह जाति अत्यन्त शीघ्र उन्नति को प्राप्त होगी जिसकी सँतान के हृदयों में जातीय शिक्षा के गौरवरूपी अङ्कुर जमाये जाते हैं" इसकी सत्यता में किसको सँदेह हो सकता है। शिक्षा विभाग की उत्तमता ही मनुष्य के भीतर जाति प्रेम का बीज बो सकती

है। जो मनुष्य जाति के लिये किसी प्रकार का अच्छा काम करके समझ लेते हैं कि हमने अपनी जाति पर किसी प्रकार का उपकार किया है वह भूल करते हैं। प्रत्युत उन्हें ईश्वर का धन्यवाद करना चाहिये कि उन्होंने अपने महान् कर्त्तव्यों में से एक अन्श की पूर्त्ति की। वे मनुष्य अत्यन्त भाग्यशाली हैं जिनको यह सिद्धांत है कि "हमारे उद्योग से हमारी प्यारी जाति को एक प्रकार का लाभ पहुंच रहा है यही हमारे लिये एक उत्तम पुरस्कार है"

"प्रेम"

प्रेम भरा जीवन उस मनुष्य से लाखों गुण उत्तम है जो कि धन से ही मुक्ति समझ कर जीवन को नीच बना लेता है" 'एक महापुरुष'

"प्रेम और प्रीति से अधिक जगत् में अन्य कोई वस्तु पवित्र और पवित्र करने वाली नहीं है" 'महात्मा बुद्ध'

प्रेम से हमारा अभिप्राय यह कभी न होना चाहिये जो कि स्त्री और पुरुष में अथवा किसी विशेष हेतु से किसी मनुष्य से होता है। किन्तु इस को एक विस्तृत मण्डल के समान समझना चाहिये अन्यथा उसकी सत्ताको बड़ाधक्का लगाने वाली बात होगी। किन्तु हमें उससे महान् भाव का आकर्षण करना चाहिये। अर्थात् हमारे प्रेम की छटा प्राणि मात्र के लिये होनी चाहिये प्रत्येक पशु के लिये जो कि हमारे ही प्रेम के भूखे टिम टिमाती दृष्टि से हमारी ओर देखते हैं मानों चाहते हैं कि हम उनसे प्रेम करें हमारे अन्दर उनके लिये प्रेमकी धारा होनी चाहिये।एक महात्मा का कथन है कि "प्रेम की दृष्टि भीतरी तत्वकोजान जाती है यही कारण है कि प्रेमी अपने प्यारे को पा लेता है"

हर्ष पूर्वक अपनी गाय अथवा कुत्ते की ओर देखने से प्रतीत होसकता है कि प्रेम की कितनी विस्तृत सीमा है। जब वे अपनी प्रेमभरी दृष्टि से अपने स्वामी की ओर देखते हैं उनके भीतरी

भावों का विकास उनके नेत्रों से होताहै यद्यपि वे मुख से नहीं बोल सकते परंतु समझने वाला जान जाता है कि वे किस प्रकार अपनी भीतरी व्यथा प्रकट कर देते हैं। एक कुत्ते की ओर देखो किस प्रकार वह अपने नेत्रों एवं पूंछ द्वारा हमसे स्नेह एवँ प्यार की याचना कर रहा है। यदि हमारे प्रेमकी छठा विद्यमान होगी तोफिर यहसंभव नहीं किहम एक ऐसे कुत्ते अथवा गायआव किसीभी प्राणीकोघृणत दृष्टिसे देखसकें।प्रेम जगत्में एकऐसी शक्तिहै कि जिसको संसारकी अन्य कोई शक्ति दलित नहीं करसकती जोमनुष्य इससे शून्य है समझलो कि उसने अपने जीवनका एक महान् आनन्द खोदिया। हमारी गवेषणा वास्तव में एक एसे चिन्हसे प्रारम्भ होती है। कि जो हमारे अपने विज्ञाने से भी वाह्य है अत एव हम अभी थोड़ा ही मार्ग पूर्ण करने पाते हैं कि वीच में ही पतन होजाता है और हृदय में एसे २ क्षुद्र संस्कार उत्पन्न होने लगजाते हैं कि जिनका हमें विचार तक न था। हमारा एक प्रेमी हमें प्रति दिन मिलने आता है। उसके एक

दिन न आनेपर हम कईप्रकारके गठन गांठने लग-
जाते हैं कभी विचार करते हैं कि उसे कोई अन्य
मित्र हमसे भी अधिक प्रेमी मिलगया या हमारा
कोई दोष अथवा छिद्र प्रतीत होगया होगा। इत्यादि
यह सब गन्दे और भद्दे संस्कार हैं जो कि हमारे
भीतर न होने चाहिये। हमने पीछे कहा था कि
हमारे प्रेम का पटल अत्यन्त विस्तृत होना
चाहिये उसका अभिप्राय यही नहीं कि हम लम्बे
चौड़े मैदान में उसे पहुंचा दें किन्तु यह भी है कि
हम उसे अपनी सत्तामें भी पूर्ण विस्तारदें जिससे
कि इस प्रकार के छोटे २ संस्कार हमारे भीतर
आने ही न पावें।

पारसी मत प्रवर्त्तक "यर दश्त" को जो
शिक्षा मिली थी जिस पर वर्त्ताव करने से कि संपूर्ण
ईरान में धूम मचगयी थी वह यही थी कि "संपूर्ण
प्राणियों से प्रेम भरा ऐसा वर्त्ताव करो कि कोई
उसके किसी अन्श को पहिचान न सके" हमारे
इस लेख से यह भाव कदापि न निकालना चाहिये
कि हम न्याय शून्यहोजायें किन्तु यह कि हम न्याय
करते भी प्रेमाविष्ट ही रहें।

उत्तम जीवन केवल जगत् की कुछ रीतियोंका सपूर्ण करदेना नहीं होता किन्तु जीवन वही है जो प्रेमानिष्ट है जिसके मुखसे घृणा के चिन्ह तक दिखाई नहीं देते जो सदैव अपने प्रेमभरे चेहरे से दूसरों के हृदयों को अपनी ओर खींच रहा है। अञ्जील में एक स्थान पर क्या ही उत्तम लिखा है "जो कुछ तुम चाहते हो कि लोग तुम्हारे साथ करें तुम भी उनके साथ एसाही करो,, यह शब्द हमारे संस्कारों को किस ओर लेजाते हैं और लेजाना चाहते हैं अञ्जील के मानने वाले यदि इस पर पूर्ण अथवा सन्तोष जनक वर्त्ताव नहीं करते तो जाने दीजिये। हमें पूर्ण अधिकार है कि हम इस पर वर्त्ताव करके दिखाये कि सत्य के ग्रहिण करने को सदैव उद्यत हैं।

प्रकृति की इच्छा यही है हमारे जीवन रूपी संग्राम भूमि में प्रेम और मृत्यु का संग्राम हो। इससे जो भी फल निकलेगा उत्तम होगा मृत्यु होगी तो प्रेम भरे मैदान में विजय होगी तो प्रेम भरे मैदान में भाव किसी ओर से भी हानि की

सम्भावना नहीं की जा सकती। जगत् में दूसरे के साथ उत्तम वर्त्ताव करना अपने साथ उत्तम वर्त्ताव करने की नीव डालना है। जगत् में सदाचारी एवं हितकारी मित्रों का मिल जाना भी जीवन यात्रा के एक साधन की प्राप्ति होना है। परन्तु एसी घटनायें अधिक नहीं हैं मित्र वास्तव में उसे समझना चाहिये कि जो प्रत्येक समय दर्पण के समान निर्मल हृदय से दिखाई दे जिससे कि उत्तमता से उसमें अपने आपको देखसकें। अर्थात् दर्पण के समान हमारी क्षतियों को जितलाता जावे। परन्तु जिस प्रकार मलिन दर्पण से न तो हम अपना मुख देखसकते हैं और नहीं अपने मुखके किसी मलिनताको देखसकतेहैं कुछलाभ नहीं हो सकता यही दशा उस मित्र की भी है कि जो ऊपर से प्रेमाविष्ट और भीतर से स्वार्थाविष्ट है। उस मनुष्य ने जगत् में अपनी एक न्यूनता को पूर्ण कर लिया है जिसको स्वच्छहृदय मित्र की प्राप्ति होगयी है। कंघी के समान केवल फूट डालनेवाले मित्रों की सत्ता से कभी किसी मनुष्य को भला

न तो हुवा और न होने की संभावनाही करनी-
चाहिये । वास्तविक मित्र वह है जो एकान्त में
हमारे दोषों से हमको उत्तमता पूर्वक सचेत करता
है जोकि उनको छिपाने का यत्न करे एसा मित्र
ऊपर से यद्यपि प्रिय प्रतीत होताहै परन्तु भीतर
में महात्मा भर्तृजी के कथनानुसार चिर स्थायी
और मीठा शत्रु,, समझना चाहिये । हमें समय
नहीं कि हम मित्रता के पूर्ण भाव को लिखें इस
की शकायत हमें सदैव रही है अस्तु प्रेम का तृतीय
भाग प्रिय वाणी है एक संस्कृत के विद्वान् का कथन
है कि "प्रिय वाणी से सपूर्ण मनुष्य सन्तुष्ट होजाते
हैं इसलिये हमको इस काम में कभी भी दरिद्रता
न करनी चाहिये,, प्रेम की उत्पत्ति अथवा सत्ता
का वास्तव में फल ही यही है कि हमारे मुखसे
किसी के लिये भी कटु वाक्य का प्रयोग न होने
पाये । स्वामी दयानन्दजी का कथन क्या उत्तम है

"मनुष्य को चाहिये कि वह सदैव प्रिय एवं
दूसरे का लाभ कारक वचन कहे । यह एक प्रकार
का मंत्र है जिससे कि एक दूसरे मनुष्य को अपना

कर सकताहै मंत्र भी एसा है कि जो तत्काल ही अपना प्रभाव डाल देताहै। जिसके साथ भी हम प्रेम भरी वाणी से पेश आयेंगे वह हमारा हो जायेगा हमारे इशारे पर रक्तक देदेने में इनकार नहीं करेगा। महात्मा विष्णु मिश्र का कथन है कि "कः परः प्रिय वादिनाम्" अर्थात् प्रियवादी के लिये कौन पराया है किन्तु सब अपने हैं।

प्रिय बचन बोलने वाले प्रेमीही भाग्य शील होतेहैं उन्हें इस बात का कभी सन्देह नहीं हुवा कि हमें कष्ट होगा प्रत्युत वे अपने इस अमूल्य रत्न से दूसरों को शिक्षा देजाते हैं कि वे जीवन को जीवन बनालेते हैं उनका जीवन आनन्द से व्यतीत होताहै क्रोधी एवं द्वेषी अपनी इसीज्वाला में दग्ध होकर रहिजाते हैं।

सज्जनों! प्रत्येक स्थानमें सुख नहीं होता किन्तु सुख उसी स्थान में है जहां कि दो मनुष्य प्रेम पूर्वक जीवन व्यतीत कर रहे हों। और आडम्बर तथा दिखाने का चिन्ह तक प्रतीत न होताहो। किसी मनुष्य की शत्रुता का शत्रुतासे ही नाश नहीं होता

किन्तु विस्तार होताहै शत्रुताके नाश करने का यदि कोई उपाय है तो वह केवल प्रेम और मैत्री भाव है। वह प्राणी निस्सन्देह देवता के समान है जिसका हृदय दूसरों की सहानुभूति से भररहा है। जिसके पास प्रेम है वह धनी है। इसके मिल जानेसे मनुष्य मनुष्य नहीं किन्तु देवता बन जाताहै शत्रुता की समाप्ति का एक अमोघ शस्त्र है जो कभी च्युत नहीं होसकता किसी विद्वान् महात्मा का कथन है कि, प्रेमी मनुष्य शत्रु एवं मित्र दोनोंका स्वामीहै आत्मिक शक्तिकी इच्छा रखने वाले हम लोगों के लिये यह उत्तम साधन है। जले भुने स्वभाव वाले भी इस नदी में स्नान करने से शान्ति पा सकतेहैं। प्रेम से उत्तम जगत् में कोई पदार्थ एसा नहीं जिससे कि हम अपने आपको आनन्दित एवं शान्त। अवस्था में रख सकें। मानुषी जीवनके लिये एक अमूल्य पदार्थ है इस के बिना हम अपने आपको क्या मनुष्य कहेंगे। यदि कुत्ता हमको काटता है तो उसके प्रतिकारमें हमभी उसे

काटकर इस बात का प्रमाण नहीं देंगे कि " हम तेरे बड़े भाई हैं "। प्यारो आओ भगवान् रामचन्द्रजी के इस कथन का चित्र बनाकर हृदय में लगा लें कि "मित्रों पड़ोसियों एवं दीनों की मृत्यु अथवा कष्ट से जो वस्तु मुझको प्राप्त होती है मैं उसे विष भरा भोजन समझता हूं।

"प्रसन्नता"

मनुष्य का सबसे पहिला धर्म यह है कि आनन्द और प्रसन्न वदन रहिने का उद्योग करे "विष्ण मित्र,,

"मनुष्य प्रसन्न चित्त रहिने के लिये बनाया गया है अतः उसको अधिकार है कि जिस प्रकार से उसकी प्राप्ति कर सकता हो करे "मेजीनी"

हमारे लिये यह अत्यन्त आवश्यक नहीं है कि हम कष्ट एवं आपत्ति के समय ही आनन्द और शान्ति की गवेषणा करें। और जब हमारे पर आपत्ति पड़ही जाये तभी अपने आप पर दया करने का विचार करें। किन्तु प्रत्येक समय

हमको आनन्द एवं शान्ति की आवश्यकता है। किसी मनुष्य के भीतर प्रेम भाव होने का चिन्ह है कि वह देखकर प्रसन्न एवं आनन्द होरहाहै। हम आनन्द के लिये उत्पन्न किये गये हैं। आनन्द और शान्ति हमारे जीवन के उत्तमतया व्यतीत होने का एक साधन है। इसकी गवेषणा के लिये इधर उधर भटकनेकी आवश्यकता नहीं क्योंकि इसका अङ्कुर हमारे अपने अन्दर विद्यमान है अन्यथा हमें इसका स्मरण भी न होता वह मनुष्य सबसे उत्तम है जो बाह्य पदार्थों की अपेक्षा अपने भीतर से आनन्दकी तलाश करता है और उसे प्राप्त कर लेता है। जिन पदार्थों को आज हम शान्ति और आनन्द दायक जान रहे हैं संभव है एक दिन वही पदार्थ हमारे लिये अशान्ति का कारण होजायें क्यों कि उनमें दोनों के उत्पन्न करने की शक्ति विद्यमान् रहिती हैं। अतएव हमें उचित है कि हम ऊपरि वास्नाओं को कम करके अपने भीतर से ही आनन्द की तलाश करें। भगवान् कृष्ण कहिते हैं कि "जिस

प्रकार नदियें समुद्र में लीन हो जाती हैं इसी प्रकार यदि किसी की वासना यें भीतर ही लीन होकर रहिजाती हों और वह वहीं आनन्द की खोज करता हो तो वह शान्त हो जाता है और उसका जीवन आनन्दसे व्यतीत होता है"। वैसे तो प्रत्येक को शान्ति एवं प्रसन्नता की आवश्य कता रहिती है और होनी चाहिये परन्तु हममें से ऐसे बहुत कम हैं कि जो उसकी प्राप्ति के वास्तविक साधनों से परिचित हों। प्राकृत नियम हमें सूचित करते हैं कि सदैव वही फल लगा करता है जिसका कि बीज बोया जाता है जौ के बीजसे कभी किसीने चने की प्राप्ति नहीं की और न कर सकता है। इस प्रकार उस मनुष्य के लिये जो कि सुख रूप फल का खेत काटना चाहता है उचित है कि सुख रूप ही बीज बोये सुखके बोने वाला ही सुख की उपलब्धि कर सकता है हमारा हृदय एक महान् खेत है इसी में सुख का बीज बोया जाता है। इसका बीज बोदो और धैर्य

मय जल से सिञ्चित करना ही इसकी वृद्धि की नीव रखना है।

हमारा धर्म है कि हम शान्त हों हमारी सँपूर्ण वासनायें हमारे अपने आधीन हों हम अपने विचारोंमें स्वतंत्र हों हमारे में आत्मिक शक्ति इस प्रकार से प्रवाहित हो कि हम दरिद्रता रोग देश परदेश आदि सब स्थानों में धैर्य युक्त रहें हमको सँसार की कोई शक्ति शोकातुर न कर सके। और हमारे सँस्कार सदैव अपने कृत्य में मग्न रहें यही आनन्द की कुञ्जी है यही आनन्द है।

यदि हम अप्रसन्न रहिते हैं तो यह हमारी अपनी क्षति है क्योंकि ईश्वर ने किसी भी प्राणी को अप्रसन्न रहिने के लिये उत्पन्न नहीं किया किन्तु प्रसन्न रहिनेके लिये ही उत्पन्न कियाहै। यदि हम अपनी भूल से किसी गढ़े में गिर कर चोट लगा लेते हैं तो पृथिवी की आकर्षण शक्ति पर दोष नहीं लगाया जासकता किन्तु अपनी क्षति माननी पड़तीहै। हमारे बनाने वाला पूर्ण ज्ञानी है वह जानता है कि हम किन २ अवस्थाओं में

सुख शान्ति आनन्द एवँ प्रसन्नता की प्राप्ति कर सकते हैं अत एव उन्ही २ अवस्थाओं के योग्य हमें बनाता है। उस पर यदि किसी प्रकार का कष्ट होता है तो शोक न करना चाहिये और नही बनाने वाले पर दोष लगाना चाहिये किन्तु उस कष्ट के कारण की गवेषणा करनी चाहिये कि वह क्यों हुवा और कहाँ से हुवा पश्चात् उसका प्रतिकार करदेना चाहिये। जगत् का कोई भी पदार्थ अपनी वास्तविक दशा में दुःख मय नहीं बनाया गया किन्तु हमारा बर्त्ताव है कि प्रत्येक पदार्थ को दुःख अथवा सुख मय बना सकता है किसी पदार्थ का बुरा अथवा भलाबना लेना प्रत्येक मनुष्य के अपने आधीन होताहै।

"अनुशीलन"

प्रत्येक मनुष्य की शिक्षा का उत्तम भाग वह है कि जो अपने जीवन के अनुशीलन में लगायाजाय "भगवान् रामचन्द्रजी"।

अनुशीलन हमारे जीवन का एक उत्तम भाग है। इसके विना जीवन शून्य माना जाता है। अनुशीलन चाहे पुस्तकों का हो चाहे जीवन का प्रत्येक आनन्द दायक है। परन्तु इनमें से उच्च यद जीवनानुशीलन का ही है। हमारे देश में अभी अनुशीलन का चर्चा बहुत कम है। यह अत्यन्त घाटे की बात है। प्रथम तो भारत में पठित मनुष्यों की संख्या स्वयं कम है। परन्तु जो कुछ है वहभी अनुशीलन में इतनी रुचि नहीं रखती जितनी उसे रखनी चाहिये। सच्चा और उत्तम पुस्तकों का अनुशीलन न केवल हमें उत्तम ही बनाने का प्रबन्ध करताहै किन्तु हमारे आत्मा में किसी प्रकार का भी कुसंस्कार नहीं जानेदेता प्रत्येक प्रकार की कुसङ्गति प्रत्येक प्रकार के संस्कारों प्रत्येक प्रकार के दुर्व्यसनों से मनुष्य की रक्षा करना इसका काम है। जब कभी भी संस्कार इधरउधर जाने अथवा फैलने लगे हाथ में अच्छी पुस्तक लेलो औरविचारने लग आओ सब प्रबन्ध ठीक होजायेगा। हमारी चेष्टाओं को उत्तम एवं

शुद्ध बनाना सद्ग्रन्थों के आधीन है । ज्यो२ हम उत्तम पुस्तको का अवलोकन किया जाताहै त्यो २ मनुष्य के संस्कारों में परिवर्त्तन होताहै। परन्तु हमारे देश की एसी व्यवस्था नही है किन्तु यहां की अवस्था इससे कुछ भिन्न है । पुस्तकों से आनन्द लेने वाले आत्मा उन्हें अपने से भी अधिक प्रेम करते हैं हमारी अपनी कृतघ्नताहै कि हम भद्दी से भद्दी वस्तुओं को तो सुन्दर और उत्तम २ आलमारियो में संवार २ कर रखें परन्तु इन अमूल्य रत्नों जीवन के देने वाले पशु से मनुष्य बनाने वाले हृदय के पवित्र एवँ स्वच्छ करने वाले जीवन के फल लाने वाले आनन्द शान्ति एवं प्रसन्नता के पियासे आत्माओं को आनन्द एवं शान्तिकी झीलमें स्नान करानेवाले सूखे हृदयोंको हराभरा करनेवाले जगज्जञ्जालकी अग्निसे झुलसी हूई आत्माओं को हिमालय की ठण्डी२ चोटियों पर लेजाकर शान्ति करनेवाले उत्तम पुस्तकोंको पाओं तले कुचल देते हैं और उन की रक्षा की ओर कुछ भी ध्यान नहीं देते। उत्तम पुस्क अपने

स्थान पर एक प्रकाश करनेवाला सूर्य है। जगत् का प्रत्येक पुस्तकालय एक प्रकार का समाज है। इसमें बड़े२ विद्वान् योगी महात्मा निवास करते हैं जो भी मनुष्य जिसप्रकार की भी इनसे सम्मति लेना चाहे ले सकता है। उसे किसी प्रकार का टिकट अथवा भाड़ा नहीं देना पड़ेगा ये महात्मा जन सबको उत्तम एवँ पवित्र शिक्षा द्वारा प्रसन्न करने का यत्न करते हैं। परँतु हमें इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिये कि इस समाज में समय के हेर फेर से महात्माओं का वेष धारण किये अनेक मूर्ख तथा धूर्त्त भी घुस जाया करते हैं। उनसे अपने आपका बचाव रखनाही कल्याण कारक होगा। उन का चिन्ह केवल इतना ही होता है कि वे उच्च जीवन की शिक्षा से सर्वथा शून्य होने तथा नीच शिक्षा देने वाले होते हैं।

उत्तम पुस्तक एक उत्तम वाटिका के समान होता है जिसमें कि नाना प्रकार के सुगन्धित तथा खिले खिलाये फूल होते हैं। और जिस में कि सब प्रकार के वृक्ष विद्यमान होते हैं। इस सुगँ-

न्धित स्थान में जाने के लिये न केवल प्रत्येक मनुष्य का अधिकार ही है किन्तु अत्यावश्यक है कि वहां जाया जाये। अच्छी पुस्तकों के अवलोकन करने से समय के हेरफेर का पता लगता है। अपने कर्त्तव्यों की जांच पड़ताल होती है। इनसे हमारा उतना ही प्रेम होना चाहिये जितना कि हमारा अपने साथ है प्रत्युत उस से भी अधिक। मेरा सदैव इन से प्रेम रहा है। मैं इन्हें अपने से भी अधिक प्रेमसे देखता हूं। मुझे खाने को न मिले परन्तु पुस्तक के बिना मेरा निर्वाह नहीं हो सकता। यह सच है। वास्तव में जिसे उत्तम पुस्तकों से प्रेम है उसे वाह्य धन की आवश्यकता नहीं होती। यह स्वयं एक प्रकार का धन है। जीवन की कुञ्जी का इनसे उत्तम तथा पता लग सकता है। ये जीवनोद्देश के बतलाने वाले हैं।

इनके बिना एक और भी पुस्तक है जिसका अवलोकन करना इन से भी अत्यावश्यक है और वह हमारा अपना "जीवन" है किसी

विद्वान् का कथन है कि "मनुष्यसे अधिक मनुष्य के लिये अध्ययन करने की अन्य कोई पुस्तक नहीं है" इसमें सन्देह नहीं और यह सत्य है। जितनी शिक्षा कि हमको मनुष्य के अथवा अपने जीवनसे मिल सकती है उतनी किसी अन्य पुस्तक से संभव नहीं। मनुष्यका अपना जीवन लक्षों शिक्षाओं का भण्डार है। यदि हम शान्तिके अभिलाषी हैं यदि चाहते हैं कि हम अपने कर्त्तव्यों की पूर्ण रूप से पड़ताल करें तो हमें अपने जीवन पर ध्यान देना होगा। इससे अनेक लाभ होते हैं। एक पश्चमी विद्वान् का कथन है कि "जितनी शिक्षा संसार भर के पुस्तकालय दे सकते हैं उससे अधिक शिक्षा मनुष्य अपने जीवन के थोड़े से अध्ययन से प्राप्त कर सकता है" मानुषी जीवन का अध्ययन कुछ सामान्य सा अध्ययन नहीं है किन्तु यह एक पूर्ण प्रकार का अध्ययन है। यदि हमें अपने जीवन के अध्ययन एवं आलोचना का अवसर मिलता रहे तो हम लक्षों के सामान्य अपराधों को क्षमा की दृष्टि से देख सकते हैं।

इससे हमको प्रतीत होता है कि "हम क्या हैं" अतएव छिद्रान्वेषणों में साहस नहीं होता। यही जीवन की कुञ्जी है। जितनी भी जगत् में हम ठोकरें खाते हैं केवल इस लिये कि हम अपने आपसे अपरिचित होते हैं। यदि हम अपने आप पर ध्यान देवें तो पता लग जायेगा कि जगत् में बहुत सी निष्फलता हमें केवल इस लिये हुई कि हमारा अपने आप पर भी विश्वास नहीं रहा। जिस मनुष्य का अपने पर विश्वास नहीं होता सचमुच वह लकड़ीके पुतलेके समान जगत् में आया हुवा भी व्यर्थ है। एसे मनुष्य संसार की सामग्री को प्राप्त होकर भी निराशासे घिरे रहिते हैं। जगत् की आपत्तियें उनके गले का हार बनी रहिती हैं।

हम जितने भी पाप करते हैं सब जीवनावलोकन के न होने से होते हैं। यदि हम जीवन का अध्ययन करते रहें तो इतने पाप हम नहीं कर पायेंगे जितने कि हम कर पाते हैं। अपने आप को पवित्र एवं सदाचारी बनाने का यह एक

उत्तम साधन है कि हम अपने जीवन रूपी पुस्तकका अध्ययन करते रहें। संसारभरकी शिक्षा सम्बन्धी पुस्तकों मेंसे जीवन सबसे उत्तम और अतिविस्तृत पुस्तक है। इसके एक२पृष्ट पर हमारे उद्देशों की भर मार है। इस पुस्तक का अध्ययन करने वाला पाप नहीं कर सकता किन्तु अपने आपको पवित्र एवं स्वच्छ बना लेता है। महात्मा सुकरात का कथन है कि "धन्य हैं वे लोग जो अपने जीवन का अध्ययन करते २ नाना प्रकार की उत्तम शिक्षाओं का संग्रह करते हैं वे सुख पायेंगे और प्रत्येक प्रकार से आनन्द मिलेगा वे शान्त चित्त होकर छिद्रान्वेषण को छोड़ अपना सुधार करते हुए जीवन व्यतीत करेंगे"।

"पुरुषार्थ"

यदि काम करते२ थक जाओ तो फिर करने लगजाओ लक्ष्मी तुम्हारा आश्रय लेगी,,

'भगवान् मनु'

"लक्ष्मी उद्योगी मनुष्य के आधीन होती है" "विष्णुमित्र"

"यदि एक मनुष्य उद्योग करके जीवन निर्वाह करता हुआ सत्य याही है तो वह मानुषी व्यवस्था के अनुसार एक धनी से उत्तम और अच्छा है,, "स्पैंसर"

उद्योग जीवन का एक चिन्ह है सांख्य एवं वैशेषिकमें इसको उत्तम यश गाया है। उद्योगन केवल शरीर के लिये ही लाभदायक है प्रत्युत इस से आत्माको एकाग्रताका लाभ होताहै ऐसे समय में जबकि हम काम करतेरथकजायें चाहे किसीप्रकार का भी क्यों न हो कैसा आराम प्रतीत है। वास्तव में सुख का अनुभव वही करसकता है। महात्मा शूद्रक कविका कथनहै कि "वही सुख शोभा पाता है जो कष्टके पश्चात् आताहै दीपकका गौरव हम को तभी प्रतीत होताहै जब उसके जलाने से पूर्व अन्धकार हो अन्यथा कुछ नहीं,, उद्योग सुख का मूल है इसके विना किसी को आनन्द और शान्ति का अनुभव नहीं होसकता। जो काम हम स्वयं करसकतेहैं उसके लिये कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती कि हम दूसरों को कष्ट देने

का विचार करें। और अपने आप में व्यर्थ आलस्य एवं प्रमाद का संहार करें। जो शक्ति जिस भी काम के लिये दी और नियत की गई है उस से उस कामका न लेना उसकी सत्ताकी आवश्यकता मात्र प्रकट करना है। एक महात्मा का कथन है कि "कुछ करते रहो अन्यथा कुछ करने से रहि जाओगे" जातीयताके विध्वंस करने वाले हेतुओं में से पुरुषार्थ शून्यता एक महान् और बलवान् हेतु है। जगत् में वह जाति वह देश सदैव रसातल को जाते रहे हैं जो उद्योग शून्य होकर अपने आपसे शत्रुता करते रहे हैं। उद्योग रहित होजाना सच मुच अपने आपको अपने आपके लिये ही एक बलवान्‌शत्रु खड़ा करलेना है। हममें से कयी एसे भी मनुष्य हैं जो उद्योग तो कर लेते हैं परन्तु सफलता न प्राप्त होने पर निरुद्योगी से भी अधिक दुःखी एवं पीडित होते हैं। इन में से अधिक संख्या आत्म हत्या तक पहुंच जाती है परन्तु इस प्रकार के मनुष्यों में प्राया विद्यार्थी अधिक हैं। वे लोग वर्त्तमान जीवन एवं जगत् से

घृणा करते हुवे अपने आपका विध्वंस करके इस बातका मुक्त कण्ठसे प्रमाण देजाते हैं कि जगत् में हमारे साथ का अभाग्य एवं हतोत्साह अन्य कोई नहीं है। उन्हें याद रखना चाहिये कि जीवनका मूल्य यह नहीं कि "क्षुद्रसी आपत्ति आने पर घवड़ा उठें और अपने शत्रु आप बन जायें किन्तु यह है कि हम उससे पूर्ण प्रकार से संग्राम करते हुवे आने वाले जगत् पर अपने उद्योग और पुरुषार्थ का प्रभाव डालजायें" मानुषी जीवन का मूल्य यही है कि हम उससे पूर्ण प्रकार से लाभ उठायें तथा उद्योग और पुरुषार्थ द्वारा उसके संपूर्ण उद्देशों को पूर्ण करें। एक पाश्चात्य विद्वान् का कथन है कि "जीवन रूपी तिलोंका उत्तमतासे तेल निकालना चाहिये" मानो हम संसार में कुछ न कुछ करते रहिने ही के लिये उत्पन्न किये गये हैं। जो मनुष्य अपने आलस्य से स्वाधीन सुख से भी वञ्चित रहिता है उससे अधिक मन्द भाग्य जगत् में अन्य कोई न समझना चाहिये धन का एकत्र करना हमारा पहिला काम है क्योंकि हम निर्धन

हैं हमारी आय नितान्त थोड़ी है और व्यय अत्यन्त पुष्कल है परन्तु जब धन के साथ अज्ञानता का सह वास होजाताहै उस समय अज्ञानता एवं धन दोनों भयानक स्वरूप को धारण करलेते हैं। निर्धन मनुष्य फिर भी यदि उसे उत्तम शिक्षा दीजाये तो कुछ न कुछ सन्तोषावस्था में रहिता है। क्योंकि उसका चित्त मेहनत एवं पुरुषार्थ की ओर निर्धन होने के कारण खिचा रहित है परन्तु धनी मनुष्य जिसके साथ कि अज्ञानता का निवास है वास्तव में अज्ञानी होता है संसार के भोगों विलासो एवं कुकर्मों मे ही जीवन व्यतीत करता है। वह अपने धनसे उतना लाभनहीं उठासकता और नहीं उठाना जानताहै जितना कि उठाना चाहिये किन्तु उसका अभ्यास इतना ही है कि किसी प्रकार दिन कटी की जाये जिससे कि जीवन के दिन पूर्ण किये जावें। हमें उद्योग का पुतला होना चाहिये क्योंकि हम निर्धन हैं मनुष्य यदि अपने आपको उद्योगी न बनाकर सुखार्थी बनाता है तो वास्तव में अपने जीवनके दिन गिनताहै

किसी महात्माका वचन है कि " क्षुद्र हृदय तथा आलसी मनुष्य वास्तविक मृत्यु से पूर्व भी कयी बार मर चुकता है क्योंकि वह क्षीण शक्ति और हत वीर्य्य होता है परन्तु वीर उद्योगी मनुष्य एकही वार मृत्यु का आस्वाद लेता है "। देश एवं जाति का उद्योग शील होना ही उस के उन्नत शील होने का चिन्ह है जिस देश अथवा जाति में उद्योगी मनुष्यों का अभाव है वह कभी भी अपने आपको जीतों में सम्मिलित नहीं कर सकती भगवान् व्यासका कथन है कि काम करते जाओ यथाशक्ति जगत् की आपत्तियों का सामना भी करते जाओ इसमें तुमको कष्ट तो होगा परन्तु तुम पापों और आलस्य की सेना को वन वासी के समान स्वाधीन कर लोगे क्योंकि उद्योग और इच्छासे सबकुछ साध्य होजाता है महाशय होगी के कथनुसार इसमें कुछसंदेहनहीं जोकुछ हमाराहै वह अवश्य हमको मिलेगा उसे कोई छीन नहीं सकता परन्तु वही पदार्थ उद्योगपूर्वक यदि हम प्रारब्धसे

छीननेका यत्न न करें तो कभी नहीं पासकते प्रारब्ध को विजय करनेका सबसे उत्तम साधन यही है कि हमको प्रत्येक समय कठिन से कठिन काम करनेका ध्यान बन्धा रहे। उद्योग जैसे स्वास्थ्य के लिये लाभ दायक है वैसेही हार्दिक शान्तिके लियेभी आनन्द वर्धक है। उद्योगी मनुष्य यदि नीरोग रहता है तो इसमें सन्देह नहीं कि शान्त चित्त भी रहता है। किसी महात्मा का वचन है कि "जो कुछ करो करो परन्तु उसे दिल लगा के करो यही उस का उत्तमतो से करना है,, हमको आत्मिक विश्वास एवं आत्मीय लक्ष इसी बात की शिक्षा देते हैं कि हम अपने ही चम्पक से जल पीने का अभ्यास करें दूसरों के आश्रयपर अपने जीवन को निर्भर कर देना महा पाप है प्रत्येक मनुष्य को उचित है अपने हाथ से उत्पन्न करके अपने जीवन को सोद्योग बनाने का यत्न करे इसी में सुख है इसी में स्वतंत्रता है यही जाति एवं देश के स्थिर रखने का मंत्र है"

'सदाचार'

जगत् में उसका जीवन सचमुच पवित्र जीवन है जिसके सदाचार की स्तुति सुन कर उस के माता पिता प्रसन्न होते हैं,, 'भगवान् रामचन्द्रजी"

"मृत्यु से जान बचा लेनी तो कठिन नहीं आनन्द तो इस में है कि मनुष्य पापों से बचता हुवा सदाचारी रहे, 'सुकरात'

"सदाचारस्वयं एक प्रकारका धन है" 'हरबर्ट' सदाचार प्रकृतिके उस निचोड़का नामहै कि जोहमारे हृदयोंमें इसप्रकार के चित्र खींचदेताहै कि "संपूर्ण प्राणी तेरेलिये वैसेहीहैं जैसाकि तूस्वयं अपनेलिये" यही सदाचारहै यही जीवनका एक मात्र चिन्ह है। जीवन की इच्छारखने वाले मनुष्य के लिये उचित है कि वह सबसे पूर्व सदाचारी हो। जैसे कुपथ्य से रोग का होना निश्चित है वैसे ही दुराचार से जीवन का भ्रष्ट होना निश्चित है। सदाचार के मार्ग में प्रवेश करते ही हम

समझ सकते हैं कि हमारा पांव आगे को जा रहा है अथवा पीछे को हट रहा है। सच पूछा जाये तो "सदाचार" के विना हमारे पास और कुछ भी गौरव नहींहै। हमारे देशमें अभी तक यदि कोई शक्ति थी तो वह यही थी जिस से कि हम दूसरों के नेत्रों में मान्य समझे जाते थे। जगत् में जितने भी रोग विस्तृत हैं उन में से आधे केवल सदाचार के न होने से मनुष्यों ने स्वयं उत्पन्न किये हैं किसी विद्वान् का कथन है कि "जब ही हमारी अवस्था १६ वर्ष से ऊपर चढ़ती है हम अपने विध्वंसकी नीव डाल देते हैं यह मृत्यु के चिन्ह हैं। वह अपने आपको कभी भी जीवित नहीं रख सकता, भगवान् मनु का कथन हैकि "दुराचारी मनुष्य संसार में कभी कीर्त्ति को प्राप्त नहीं कर सकता प्रत्युत सदैव दुःख और आपत्तियों में ग्रस्त होकर बहुत शीघ्र नष्ट हो जाता है" जगत् में आधी से अधिक आपत्तियें हमारी अपनी उत्पन्न की हुईहैं और इनकी नीव हमने उसी दिन रखदीथी कि जिस

दिन हमने सदाचार के शिर पर पानी फेरने का विचार ही किया था । ये इस प्रकार की आदतें हैं कि जिनको हम युवावस्था में अपने गले लगाते हुए कुछ इतना बुरा नहीं समझते जितना कि उसका फल बुरा देखना पड़ता है । इस प्रकार के अभ्यास आते समय मिठाई के समान प्रतीत होते हैं विशेषतया युवावस्था में परन्तु जब इनका फल विषके समान प्रकट ही नहीं होता किन्तु हमारे जीवन का शत्रु रूप हो कर उसे विध्वंस करने लगता है तब नेत्र खुलते हैं परन्तु वह समय ऐसा होता है कि हमारी शक्तियें हमसे पृथक् हो चुकती हैं अतः हम उनके विषय में कुछ विशेष परिवर्त्तन नहीं कर सकते। इस लिये आवश्यकता है कि हम प्रथमतः ही अपनी अवस्था को संभालने का यत्न विशेष करें। जो मनुष्य अपनी अवस्था और व्यवस्था को अपने आधीन नहीं रख सकता वह अपने आपको सदाचार के शिखिर पर कभी भी नहीं लेजासकता सदाचार मयी सम्पत्ति की प्राप्ति का सबसे पहिला साधन यह है कि हम

"कुसङ्गति का परित्याग करें" चाहे वह बुरे पुस्तकों की हो अथवा बुरे मनुष्यों की हो या किसी अन्य प्रकार की हो । दूसरा उपाय यह है कि हम "अपने संस्कारों को सदैव उत्तम और उच्च व्यवस्थाओं के आधीन रखने का अभ्यास करें" इससे हम न केवल सदाचार मयी सम्पत्ति को ही प्राप्त हो सकेंगे प्रत्युत अपने संस्कारों को उच्च संस्कार बनालेंगे । तृतीय जोकि अत्यन्त सुगम और अनायास प्राप्त है यह है कि हम अपनी व्यवस्था और समय के अवलोकन करनेका अभ्यास किया करें । यदि हम कल (विगत दिवस) के संपूर्ण कुसँस्कारों की संख्या और व्यवस्था को याद रखते हैं तोआज हम उतने ही कुसंस्कारोंमें ग्रस्त होने के लिये कभी भी उद्यत न होंगे हमारा विवेक हमारा सहायक एवं शासक होगा । हम अपने इन शब्दों को विस्तृत रूप में यूं कहि सकते हैं कि हमें अपने समय और संस्कारों को किसी विशेष आश्रय में देकर उन परपूरा २ शासन करते रहिना चाहिये ताकि उनका उपयोग पूर्ण प्रकार

से जीवनोद्देश की पूर्त्तिमें ही व्यय हो । हमको स्मरण रखना चाहिये जो मनुष्य अपने संस्कारों पर शासन नहीं कर सकता वह सदाचार अर्थात् सम्पत्ति से सर्वदा शून्य रहेगा,, सदाचार की रक्षा के लिये संस्कारों की रक्षा एक उत्तम साधन है जिस प्रकार एक क्षेत्र को लगाया गया पानी उस क्षेत्र को भर देताहै परन्तु यदि कोई मनुष्य उसके शिर पर रक्षा करने वाला न हो तो वही पानी उस क्षेत्र को भर कर अथवा पूर्व भी अन्यत्र नीचे स्थान में चला जाताहै। इसीप्रकार यदि संस्कारों की रक्षा नकी जायेगी तो वे अधोगति को स्वयं प्राप्त होकर हमारे नाश का हेतु हो जायेंगे एक विद्वान् का कथन है "नष्ट किये गये संस्कार भी मनुष्य का नाश करसकतेहै,, जितनी भी संस्कारों की रक्षा होगी उतनाही हमारा आचार सुरक्षित होगा सदाचारसे उत्तम कोई जीवन नहीं और संस्कारों की रक्षा के समान उसके रक्षण का अन्य कोई उपाय नहीं है । एक पाश्चात्य विद्वान् "बोर्डमैन" का कथन है कि कर्म का बीज बोदो अभ्यास का

क्षेत्र काट लो (क्योंकि इसी से अभ्यास दृढ़ होता है) यदि अभ्यास का बीज बोदोगे तो सदाचार का क्षेत्र लहिराने लगेगा और यदि सदाचार का बीज बोदोगे तो अपने भाग्य के स्वामी बन जाओगे" सदाचारी और पवित्रात्मा उस मनुष्य से लक्षों गुणा उत्तम है जिसके पास कि सब संसार की सम्पत्ति एकत्रित है। सत्य और सदाचार से अधिक जगत् में कोईभी गौरव नहीं है। यदि हमारे पास सदा चार मयी सम्पत्ति विद्यमान् है यदि हम सदा चारी हैं और अपने वचनों पर न मिटने वाले हैं तो जगत् की कौन सी शक्ति है जो हमको अपने उद्देशों से च्युत करसकती है? यूरोप देश का "मर्टन् लूथर" क्याथा उसके पास सम्पत्ति न थी कोई प्रेजुएट न था। किन्तु एक माली का पुत्र। सदाचार मय सूर्य्य की किरणें इतनी तीक्ष्ण थीं कि सदाचारी लूथर के सामने पोप जैसे सांसारिक सम्पत्तियों से सुशित और अपनी आज्ञा को ईश्वराज्ञा मानने वाले भी स्थिर न

रहिसके। महात्मा बुद्ध के पास किसी प्रकार की सेना न थी नही किसी देशपर आक्रमण करना जानते थे किन्तु एक सीधा एवँ साधारण जीवन था जो कि अपने सदाचार और पवित्र सँस्कारोंके बल से सँसार के बहुतसे भाग को अपना अनुयायी बनागये। महात्मा (शङ्कर) के पास न तो तोप खानाही था न किसी प्रकार की विध्वंसक शक्ति का सञ्चार था किन्तु यही सम्पत्ति थी जिसका कि ऊपर विवरण कियागया। यही अवस्था स्वामी दया-नन्द आदिकोंकी है। यदि हमारे वचन सत्य हैं और हम सदाचारी हैं तो प्रकृति हमको सम्बोधन करके कहि सकती हैं कि " तुम मनुष्य हो "

मानुषी सदाचार मय उद्यानके बहुतसे वृक्ष हैं 'सत्य' 'सभ्यता' 'सन्तोष' 'नेकी' 'सानसत्कार' इत्यादि सब सदाचार के ही अन्तर्भूत हैं।

'प्रसिद्धी'

ख्याति की क्षुधा से क्षुधित मनुष्य क्या २ पाप नहीं करताहै यह किसी महात्मा साधु का वचनहै। ऐसे मनुष्य हमारे भीतर बहुत

थोड़े हैं जिनको कि ख्याति की इच्छा नहीं अथवा जो अपनी विशेष व्यवस्थाओं से ही विख्यात होने की इच्छा रखते हों। मनुष्य में यह भी एक आत्मिक क्षति है कि वह अपने विषयमें दूसरोंकी सम्मति अधिक सुनना चाहता है। ऐसे मनुष्य न तो आनन्द की प्राप्ति ही कर सकते हैं और न उन्हें वास्तविक अथवा भीतरी शान्तिही मिल सकती है। दूसरों से लीगयी स्तुति पर अपने आनन्द और सुखका भार रखनेवाला प्राकृत नियमानुकूल इनदोनोंसे वञ्चित रहिता है। इसका समझ लेना नितान्त कठिन है कि क्यों हमको अपने विषय में दूसरोंसे कुछ सुनने की इच्छा लगीरहिती है परन्तु इतना अवश्य है कि यदि कोई हमारी स्तुति करता है तो हम प्रसन्न वदन दिखाई देते हैं भगवान् रामचन्द्र के कथनानुसार 'मानों हमें किसी गहृति विपत्ति में एक ढाढ़स मिल गयी है' बहुत से मनुष्यों की प्रकृति ही इस प्रकार की हो गयी है कि वे सदैव ऐसी चेष्टायें करते रहिते हैं कि जिनसे लोग उनको उत्तम वा भला कहैं

वे कभी २ अपने आत्मा के भी विरुद्ध कर बैठते हैं और यदि कोई मनुष्य उन्हें पूछे तो उत्तर में लोकलाज के अन्य कुछ नहीं होता। इस प्रकार की बालूमयी ऊंची अटारियों पर सोने वालों को स्मरण रखना चाहिये कि जिस दिन उनकी इस पुष्प मयी अथवा बालु मयी भित्ति (दीवार) को किञ्चिन्मात्र भी चोट लगेगी तो सम्पूर्ण अवस्था की एकत्रित की गयी सम्पत्ति का क्षण भर में विध्वंस हो जायेगा। न केवल दीवार ही गिरेगी किन्तु साथ ही उन्हें भी एक धक्का लगेगा जिससे संभलना उन्हें कठिन होगा। अपने विषय में दूसरों से केवल उत्तम शब्दों के सुनने की इच्छा वाला किसी प्रकार का जातीय अथवा देशीय उपकार नहीं कर सकता वह केवल दूसरों के हाथ की कठपुतली होता है। उसे वही काम करने पड़ते हैं जिन से कि दूसरों की सम्मति उस के विषय में उत्तम रहे मानो यह एक प्रकार की परीक्षा है जिस में उत्तीर्ण होजाना ही उसके सब कर्मों की सीमा होती है। ऐसे मनुष्य जब स्वयं स्वतंत्र नहीं होते

तो अन्य किसी को सहायता देनेमें कब समर्थ हो सकते हैं ? न वे लोग किसी से किसी प्रकार की विशेष सज्जनता ही कर सकते हैं क्योंकि उन के अपने कान उनके पूर्ण शत्रु होते हैं। जिस किसी ने उनकी स्तुति मयी कल को सीधा घुमा दिया उसी के सँमुख उनका नृत्य आरम्भ हो जायेगा। ज्यूँही वह केवल किञ्चिन्मात्र भी उलटी घूमगयी तो फिर शिथल पड़ गये। पुनः उन का सचेत करना उनके स्तोत्र मात्र का पाठारम्भ ही साधन होता है। क्या ये देश पर किसी प्रकार का उपकार कर सकते हैं ? कदापि नहीं ऐसे मनुष्यों से बचना ही हमारा धर्म होना चाहिये। जगत् में ऐसे पवित्रात्माओं की संख्या अधिक नहीं जो अपने विवेक के आनंद में मग्न होकर सदैव दूसरों की भलाई में दत्तचित्तहों किन्तु प्रायेण अधिकता उन्हीं की है जोकि दीवारों और मोरियों में कान लगा२ कर ही जीवन व्यतीत कर रहे हैं। उन्हें इसी प्रकार का भ्रम बना रहता है कि न जाने मेरे विषय में इनकी क्या सम्मति है

इसमें संदेह नहीं कि "लोकमत का सत्कार करना प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है" इसी पर राजशासन की सत्ता स्थिर होसकती है परन्तु यह एक भूल है कि हम स्वकीय सत्ता विषयमें भी लोकमत की भूख से पीड़ित एवं दुःखी होते रहें इस विषय में हमें केवल अपने विवेककी सम्मति लेनीचाहिये। यदि हमारा विवेक हमको अच्छा बतलाता है तो हमें कोईआवश्यकता नहीं कि हम लोकमतकी प्रतीक्षा करें यदि हमारा विवेक हमको नीच प्रकट करता है तो लोकमत हमें प्रसन्न नहीं करसकता क्योंकि हमारा जितना गूढ़ और घनिष्ठ सम्बंध हमारे अपने विवेकसेहै उतना किसी अन्यसेनहीं हमारा कर्त्तव्य है कि जो भी हमारी स्तुति आदि करताहै हम उसके शब्दों को ध्यान पूर्वक सुनें और उन के विषय में पूर्ण परामर्श करें कि आया वे बातें हमारे भीतर विद्यमान हैं अथवा नहीं। यदि हों तो प्रसन्न बनना प्राकृत नियमहै (परन्तु फिर भी हमें भूलजाना चाहिये अन्यथा अभ्यास पड़जायेगा कि हम अपनी स्तुति सुनकर प्रसन्नहुवा करें।)

यदि नहीं तो समझ लें कि उसने हमारे विषय में झूंटबोला है क्योंकि वास्तव में हम वैसे नहीं जैसे कि सुनाये गये हैं। प्रत्येक उत्तम काम के करने से स्तुति का होना एक प्राकृत नियम है परन्तु हम "अपना कर्त्तव्य कह कर उससे पृथक् रहि सकते हैं"। इस से ऊपर और कोई नीच संस्कार नहीं हैं कि हम अपने किये उत्तम कामों के बदले में अपनी मात्र स्तुति के अभिलाषी हों ख्याति बड़ाई एवं स्तुति के पीछे जन्म भ्रष्ट करने वालों को स्मरण रखना चाहिये कि वे देश और जाति का तो क्या अपना भी भला नहीं कर सकेंगे। वे जातियें एवं मनुष्य कभी भी स्थीर व नहीं देखे जायेंगे जिन के उत्तम एवं अच्छे कामों पर आत्मिकश्लाघा का राज्य होगा। स्तुति की प्राप्ति की इच्छा से जीवन दान कर देने पर भी यदि सफलता न हो तो उसकी दशा उसके कोमल हृदय की उन क्रियाओं से जानी जासकती है जिनको कि वह कभी २ बड़ बड़ा हटावस्था में प्रकट करता रहिता है। उसके वर्त्त

मान् संस्कार क्या २ नाच नाचते होंगे अस्तु यह निश्चित जान लेना हमारा धर्म है कि केवल एक तुच्छ सी बात के पीछे हमारा अपूर्व और संपूर्ण जीवन मट्टीमें मिल जाताहै। इसने हमारे हृदयों को इतना आच्छादित कर लिया है कि हम पांव पांव पर ठोकरें खारहे हैं इन गन्दे संस्कारों ने हमें चारों ओर से घेर रक्खा है। हमको स्मरण रखना चाहिये कि यदि हम मन्द कर्मोंके करनेवाले नहींतो जगत् की कोईभी शक्ति हमको नीचा नहीं दिखा सकती और यदि हम इसके विरुद्ध हैं तो सब से पूर्व हमारा अपना विवेकही हमें नीच कहिनेके लिये उद्यत होसकता है यह सार है और इसका नाम प्राकृत नियमहै।

किसी विद्वान् का वचन है कि 'जगत् में सबसे बड़ा मूर्ख वह है जो अपनी अवस्थापर ध्यान न दे कर अपने आपको दूसरों के शब्द मात्र पर छोड़ देताहै' किसीअन्य महात्माका भी कथनहै कि 'वह मनुष्य अत्यन्त ही भाग्य हीन है जो अपने वास्तविक आनन्द और प्रसन्नताका बोझ दूसरों

के वचनों पर डालकर निश्चिन्त होना चाहता है' ऐसी प्रकृति के मनुष्य सत्य एवं आनन्द के स्वरूपको नहीं जानसकते । महात्मा गोतम बुद्धने क्याही उत्तम वचन कहा है कि 'जगत्में तुम जो कुछ भी करना चाहते हो अपना कर्त्तव्य एवं धर्म समझकर करो क्यों कि तुम्हारी उच्च शान्ति और प्रसन्नता तुम्हारे अपने भीतर है जिसका स्थान तुम्हारा हृदयहै और कुञ्जी तुम्हारा विवेकहै' यह शब्द वैसे तो सीधे हैं परन्तु सार गर्भित और भाव पूर्ण हैं । हमें जितनी शान्ति और आनन्द अपने आपसे मिल सकतेहैं असंभव है कि किसी अन्य से मिल सकें । वास्तविक शान्ति की इच्छा के लिये आवश्यक है कि हम अपने जीवन रूपी उद्यान का भ्रमण करें और उसमें जहां २ भी अपने को नेकी मय पुष्प दिखाई द देवें इस से हमें शान्ति मिलेगी आत्मा प्रसन्न होगा महाराज विक्रम का वचन है कि ' उनका संपूर्ण जीवन रूपी बगीचा सुगन्धि युक्त फूलों से भर जाता है उसे कहीं से भी दुर्गन्धि नहीं आती

वे उसमें नैठ अपने आपको कृत्य कृत्य समझते हैं और न नाश होनेवाले आनन्दका अनुभव करते हैं' हम इस में इतना और निवेदन करना चाहते हैं कि वे सत्कर्म रूप जीवन में लोक मतपर कुछ भी ध्यान न देकर केवल स्वकर्तव्य पालन की धुन में मग्न रहिते हैं महात्मा बुद्ध का कथन है कि 'तुम जो कुछ चाहो बन सकते हो' जब यह सत्य है तो क्यों हम अपने आपको व्यर्थ दूसरों पर डाल कर कष्ट उठायें अथवा अपने आनन्द के लिये दूसरों के थोथे शब्दों की प्रतीक्षा करें हमे उचित है कि अपना कर्तव्य पालन करते चलेजायें जगत् स्वयं हमारा होगा हमारा विरोध करनेवाले स्वयंनष्ट होजायेंगे। यदि हम अपने कर्तव्यका पालन करते हैं और अपने धर्म पर आरूढ है तो हमारा अपना विवेक हमें भला एवं नेक कहिने के लिये उद्यत हो जायगा शेष जगत् स्वयं हमारा अनुसरण करने लगेगा। फूलों ने कभी भ्रमरके पास सन्देशा नही भेजा कि तुम मेरे पास आओ और नही अपनी स्तुति की है किन्तु जब वे

सुगन्धि युक्त होगये हैं भ्रमर स्वयं उनपर मोहित होकर आये हैं और आते हैं प्यारे सज्जनों! योग्य बनजाओ जगत् तुम्हारे पर लट्टू है तुम्हें कोई आवश्य कता न होगी कि अपने मुख मियाँ मिट्ठू बनो। ओपन हार के इन शब्दोंको यादरक्खो 'तुम्हारा आनन्द तुम्हारे अपने आप पर निर्भर है न कि लोगों की व्यर्थ स्तुति करने पर'।

छिद्रान्वेषण

अपने आपको छोड़कर दूसरों के भीतर छिद्रों की गवेषणा करनी महापाप है। हम में बहुत से मनुष्य हैं जो कि अपनी कुछ भी ख़बर न रख कर दूसरों की एवजोई को अपना परम धर्म समझते हैं मानों उनके कल्याण का साधन केवल मात्र छिद्रान्वेषण ही है। परन्तु जो मनुष्य अपना खोज करने वाला है वह दूसरों की क्षतियोंको सच गुच क्षमा दृष्टि से देखसकता है। क्योंकि सावधानी से अपने आपकी आलोचना करने में प्रवृत्त होता है उसे अपने आपको

छोड़ कर दूसरों के छिद्र देखने का अवकाश ही नहीं मिलता कि वह कुछ कर सके। हमें स्मरण रखने की आवश्यकता है कि छिद्रान्वेषण करना स्वयं छिद्रों मेंसे एक छिद्र है इस प्रकार के नीच संस्कारों को भी यदि कोई अपना बुद्धि चातुर्य ही जानता है उसे सचमुच मति शून्य ही समझना चाहिये। जगत् में सच्चा पवित्र और कर्त्तव्य पूर्ण जीवन रखनेवाले को जितना आनन्द और सुख मिल सकता है उतना छिद्रान्वेषण रूपी ज्वाला से झुलसे हुवे अशान्त हृदयों को असंभव है। वे सर्वदा इसी ज्वाला में पड़े रहते हैं अपनी ओर से तो वे सत्य वादी होने का प्रमाण देते हैं परन्तु वास्तव में यह उन्हीं की मन्द चेष्टाओं के छिपानेका ढङ्ग अथवा स्वांग है यदि इनमें से किसी को छिद्रान्वेषण का ही अधिक प्रेम हो तो उसे उचित है कि वह प्राकृत गुणों में अपने विचार को विस्तार दे इससे उसे उत्तम फलकी संभावना हो सकती है अथवा सबसे पूर्व अपने जीवन के छिद्रों की गवेषणा करे इससे जीवन पवित्र बनता जायेगा और आत्मा को शान्ति होगी।

जगत् में इससे अधिक और पाप कुछ नहीं कि हम अपने आपमें सहस्रों दोष रखते हुवे भी दूसरों के भीतर छिद्रों की पड़ताल करें । इस विद्या की परीक्षा सबसे पूर्व हमें अपने आप पर ही करनी चाहिये और हमें यह भी निश्चय कर लेना चाहिये कि यदि हमारा जीवन छिद्रों से मुक्त है यदि हमारे में कोई त्रुटि विद्यमान् नहीं है तो जगत् की कोई भी शक्ति हमारा विरोध करके उत्तम फल नहीं निकाल सकती परमात्मा हमारे सहायक हैं छिद्रान्वेषकों को अपना काम करने दो और हमें अपना काम करते जाना चाहिये इसी में हमारा कल्याण है और यही हमारा धर्म है ।

'संगति'

नीच सङ्गति के प्रबल प्रभावोंसे बचना सुगम नहीं है ' ' भगवान् रामचन्द्रजी '

' उत्तम वस्तु की सङ्गति सबको उत्तम ही बनाती है ' ' भगवान् कृष्ण '

'नीच मनुष्यों के पास बैठने से उनको उत्तम बनाने के स्थान स्वयं नीच बनजाना सुगम है'
'अफलातून'

हम जगत् के उत्पन्न कियेगये उन सत्त्वोंमें सेहैं कि जो इस बात का मुक्त प्रमाण है कि हमें सङ्गतिकी अत्यन्तावश्यकता है। ईश्वरीय रचना का कोई भी कोइ इसप्रकार से विद्यमान नहीं है कि जिसमें सङ्गतिकी अकट्य शृङ्खला न हो। क्षुद्रसे क्षुद्र जीव भी इसकी सङ्कलमें जकड़ेगये हैं। मानो वे उत्पन्न ही इस उद्देश्य से किये गये हैं। संगति एक प्रकार का मन्त्र है जिसके द्वारा कि हम अपने जीवनको नीचसे नीच और उच्चसे उच्च बनासकते हैं। संगति शून्य होजाना हमारे लिये नितान्त असम्भव है क्योंकि हमारी रचनाका तन्त्रही इसीप्रकारकाहै। किन्तु इतना अवश्य हमारे वशमेंहै कि हमइसे नरक का साधन बनालें अथवा स्वर्गका इसमें कोई वस्तु बाधक नहीं हो सकती। हमारा शरीरभी विविध परमाणुओं के सहवाससे बना है अतएव यदिहम

यह चाहें कि संगति शून्य होजायें तो कठिन है। सँगति द्वारा मनुष्य मनुष्य बनजाता है इसी से मनुष्य पशु बनसकता है। यदि हमारा प्रेमपूर्वक उत्तम मनुष्यों में सहवास है तो हमारा जीवन पवित्र है और उत्तम फल उत्पन्न करने के योग्य बनरहा है। यदि उत्तम मनुष्यों से शून्य है तो हम कुछ भी नहीं करसकते किन्तु अपने आपको अपने आप से भी खोरहे हैं। मधु मक्खी अपने सदृश सहवासके प्रभावसे मधुको उत्पन्न करती है जो कि अपने मीठे में दृष्टान्त मात्र है। इसी प्रकार यदि किसी स्थानपर २-४ उत्तम एवँ भले मनुष्यों का प्रेम पूर्वक सहवास है तो समझलेना चाहिये कि उत्तम फल की उत्पत्ति के लिये एक यन्त्र स्थित होगया है। उत्तम और पवित्र संगति उत्तम एवं पवित्र बनाने के लिये एक प्रकार का यन्त्र है। हम लोगों को सदैव उन पवित्रात्माओं की संगति करनी चाहिये जो कि सदाचारादि रङ्गों से रँगे हुए हैं। जिससे कि हम स्वयं भी वैसे ही बनसकें। लोक प्रवाद है कि 'साधु रसायन

विद्या जानते हैं ' इसमें सन्देह नहीं कि उत्तम महात्माजन पशु से मनुष्य तो अवश्यमेव बनादेते हैं। सङ्गति से हमारा अभिप्राय केवल मानवी प्रजा से नहीं किन्तु प्रत्येक प्रकार की सङ्गतिसे है। चाहे मनुष्य की हो अथवा पशुओं की वनस्पति की हो अथवा सूर्य्य आदि नक्षत्रों की सब अपना२ प्रभाव रखते हैं प्रभाव शून्य जगत् में कोई वस्तु नहीं। यदि उत्तम फूल के सूंघने से सुगन्धि आती है तो उसके विरोधी से दुर्गन्धिभी अवश्य आयेगी। यदि हम उत्तम वनस्पति के सेवन से उत्तम बन-सकते है तो नीच वनस्पति से वैसे भी बनसकते हैं। उत्तम एवं पुष्टि कारक भोजन से यदि हम उत्तम और पुष्ट होजाते हैं तो नीच भोजन में हमें नीच और निर्बल बनाने की शक्ति भी विद्यमान है। भाव जितने भी पदार्थ संसार में हैं सब अपना २ प्रभाव विशेष रखते हैं। अतएव हमें सदैव अपने योग्य पदार्थों के सहवास से लाभ उठाने का यत्न करते रहिना चाहिये। जिससे कि हम संभवतः जीवन की दुर्घटनाओं से मुक्त रहें। मनुष्य प्राकृत

नियमानुसार ही दूसरे पदार्थों का शिष्य बनाया गया है। उसे प्रत्येक अवस्था में अन्य से शिक्षा लेनी पड़ती है। छोटी अवस्था में बालक जिन शब्दों को सुन लेता है प्रायः कई बार उनका स्वयं उच्चारण करता देखा गया है। जिससे प्रतीत होता है कि वह उन्हें अपने स्मरण में रख रहा है। अत एव यदि उसके कानों में उत्तम शब्दों का निवेश होता है तो वे उसे उत्तम बनानेका प्रबन्ध करते हैं। यदि इसके विरुद्ध होता है तो नीच एवं अधोगति को पहुंचानेका प्रबन्ध करते हैं। यह दशा न केवल लघु अवस्था के लिये ही है किन्तु युवा वृद्ध सभी इसके आधीन हैं। धन अवस्था तथा संसार के संपूर्ण पदार्थों की अपेक्षा हमारा वह प्रेम आदर एवं सत्कार की दृष्टिसे देखा जायेगा जो कि हम सच्चे हृदय से पवित्रात्माओं की ओर बढ़ाते हैं। इन पवित्र मनुष्यों की ही सङ्गतिसे हमारे जीवन का उद्धार एवं सुधार सम्भव है एक महात्माका कथन है कि " वे मनुष्य नितान्त भाग्यशाली हैं जिन्हें

कि बाल्यावस्था से ही पवित्र और योग्य माता पिता तथा अन्य महान् पुरुषों की सत्सङ्गति का शुभ अवसर प्राप्त हुवा है"। उत्तम सङ्गति का मिल जाना तथा उसकी गवेषणा भी मातापिता के डाले हुए संस्कारों का फल होता है। जिस२ प्रकार के संस्कार हमें मिलेंगे उसी२ प्रकार की अभिलाषायें हमारे अन्दर उठेंगी। जिस भी पदार्थ के हम अभिलाषी होंगे उसका चिन्तन एवं अनु-संधान अवश्य करेंगे। इस से जिस पदार्थ की उपलब्धि होती है उसके सहवास से उसके प्रभावों का हमारे भीतर सञ्चार अवश्य होता है। इसी प्रकार हमारी सङ्गति का प्रभाव उनपर पड़ता है यदि हम किसी उद्यान में जाकर उसके सुगन्धित पुष्पों की स्वच्छ वायुका आनँदलेते हैं तो अपनी भीतरी दुर्गन्ध युक्त वायुका प्रभाव उनपर छोड़ते भी हैं इस लिये हम को समझ लेना चाहिये कि "नीच साथी नीच पुस्तक नीच संस्कार एवं सङ्गति भले से भले और उत्तम से उत्तम मनुष्य को भी नीच बनाने का प्रबन्ध किये बिना नहीं छोड़ती"। नीच पुस्तकों की सङ्गति न केवल

हमारे धन का ही नाश करती है किन्तु अमूल्य समय और जीवनके भी नाशका हेतु होती है। हमारे जीवनकी नीची ऊँची दशाओंका भार संस्कारों परहै। और जब नीच पुस्तकों से संस्कार नष्ट भ्रष्ट होंगे तो जीवन बच नहीं सकता। जिसके संस्कार पवित्र एवं उच्च हैं उसका जीवन विकास की ओर झुकता है। एवं जिसके संस्कार मन्द हैं उस का जीवन विनाश का आश्रय लेता है। यह सत्य है और यह प्राकृत नियम है। अभी तक किसी ने यह नहीं सिद्ध किया कि नीच संस्कारों का फल उत्तम होता है। इस प्रकार के संस्कार धीरे २ भीतरी भीतर उन्नति पाते हैं अन्तको इतने बढ़ जाते हैं कि दूसरों को भी उस से दुर्गन्धि आने लग जाती है। यह सब कुसङ्गति का फल है। विद्वान् अफलातून का कथन है कि "नीच मनुष्यों पुस्तकों एवं अन्य वस्तुवों की सङ्गति का न करना ही उच्च संस्कारों की प्राप्ति की नींव डालना है" इसीप्रकार एक अन्य पाश्चात्य विद्वान् का कथन है कि "धन कीर्त्ति एवं आरोग्यता से सत्पुरुषकी थोड़ीसी सङ्गतिभी अधिक मूल्य रखती

है और संपूर्ण उदार तथा सत्यवादी मनुष्य इसी से उत्पन्न होते हैं"।

"उन्नति"

उन्नति का शब्द सबको प्रिय है इसकी इच्छा सबको है कौन है जो इसके लिये मारा २ नहीं फिरता। इसके पीछे बड़े२ कष्ट उठाये जाते हैं यह सर्व प्रिय शब्द वास्तव में स्वयँ भी एक उत्तम शब्द है यदि एक स्कूलका लड़का दिनरात जागता है तो केवल इसके लिये यदि एकसिपाही युद्ध भूमि में आगे होकर लड़ता है तो इसी भग-वती के लिये यदि एक व्यापारी मारा२ फिरता है तो इसी की चाह में। भाव यह सर्व प्रिय है और होनी चाहिये।

उन्नति का दूसरा नाम विकास है यह उससे भी उत्तम एवं प्रिय है। परन्तु यह किस प्रकार से मिलता है इसका जानना हमारा सबका कर्त्त-व्य ही नही किन्तु धर्म है। जो मनुष्य इसे नहीं जानता वह इसे प्राप्त भी नहीं हो सकता। इस की प्राप्ति के लिये अत्यावश्यक है कि हम इसके

साधनों को भी जानें। महाराज युधिष्ठिर का कथन है कि "अपने आप को दूसरों के हवाले कर देना ही उन्नति की नीव डालता है" इस का दूसरा नाम विकास है यह विनाश के पीछे ही आया करता है। जब तक किसी वस्तु का विनाश नहीं होता उसका पुनर्विकाश असम्भव है भगवान् रामचन्द्र जी ने कहा है कि "आगा उसीको मिलताहै जो कि पीछेका त्याग करता है" यह सचहै वास्तव मे जो मनुष्य वर्त्तमान अवस्था को नहीं छोड़ सकता वह आने वाली अवस्था को पा भी नहीं सकता। आने वाली अवस्था को पाने के लिये अत्यावश्यक है कि हम वर्त्तमान अवस्था का त्याग करें। कवि-शूद्रक ने क्या ही उत्तम कहा है कि 'सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभते' अर्थात् वहीसुख वास्तवमें सुख है जो दुःख के पीछे आता है। उस समय उसकी कदर होती है उस समय उसे विचार से भोगा जाता है। जो वृक्ष वायु आदि विरुद्ध शक्तियों का सामना नहीं कर लेता क्या उसकी जड़ कभी दृढ़ और चिरस्थाई हुई है? कभी नहीं। वही

वृक्ष उन्नति को प्राप्त होता है वही दृढ़ होता है जो वायु आदि विरुद्ध शक्तियों का नितांत धैर्य से सामना करता है । अन्यथा क्षण भर में नष्ट भ्रष्ट होकर पृथिवी से अपने नाम व निशान को मिटाजाता है इसीप्रकार जो मनुष्य अपनी विरोधी शक्तियों का पूर्ण वीरता से सामना नहीं करता वह कभी भी उन्नतावस्था की प्राप्ति नहीं कर सकता । विरोधी शक्तियों की चोटों का धैर्य से सहन करना ही बढ़ने का निशान है । देखो फूल कैसा सुन्दर है हमारे मनोराम को किस प्रकार से अपनी ओर खिंचे जारहा है कैसी सुगन्धि भर रही है परन्तु भौंरा यदि कांटों के चुभाव के भय से तथा उसके मुंद जाने से भिच जाने के भय से उसके समीप न जाय तो क्या वह उस सुगन्धि को पा सकता है जिस पर कि मर मिटना उस का परम धर्म है? । बस "मरमिटना" ही उसकी प्राप्ति है यही उसकी कुञ्जी और सच्चाई है ।

लोहा जब अग्नि तथा हथौड़े की चोटों का सच्चे हृदय से सहन कर लेता है तो विस्तार पाता है

फैल जाता है सूक्ष्म हो जाता है सोना जब ही अग्नि की गरमीका सहन करता है तब ही स्वच्छ निर्मल और उज्ज्वल हो जाता है। लकड़ी कैसी भारीहै उसका उठाना नितान्त कठिन है परन्तु जबहीं वह आग पर चढ़तीहै और उसका सहन करती है कैसी हल्की हो जाती है अब वह बिना उठाये आकाश में घूमती है यही उन्नति एवं विकाश का भेद है इसी से देशों जातियों और व्यक्तियोंका तन्त्र चला है प्रत्येक प्रकार की उन्नति तथा विकास में यही तन्त्र कारकर रहा है जो भी मनुष्य अपनी विरोधी शक्तियों का सामना नहीं करसकता उसे उचित है कि उन्नति और विकास का नाम न ले। अन्यथा जैसे एक गीली लकड़ी चूल्हे में जाकर धुखने लग जाती है धुंखते २ बड़ी देर में अपने पदको प्राप्त होती है और उसके कोयले बना लिये जायें तो पुनःदो बारह आगपर चढ़ायेजाते हैं परन्तु उनका पीछा नहीं छोड़ाजाता जबतक कि वे अपनी वास्तविक अवस्थापर नहीं आजाते। यही दशा उनकी होगी फिर सताये जायेंगे फिरसताये जायेंगे उन्हे लाचार

उसी मार्ग पर आना होगा जिसपर कि आना पसन्द न था अत एव उचित यही है कि हम विरोधी शक्तियों का सच्चे हृदय से सामना करें

आने वाला विकास वर्त्तमान अवस्थाके विनाश के पश्चात् ही आया करता है। वर्त्तमान अवस्था के नाश किये बिना विकाश नहीं हो सकता। अञ्जील में एक स्थान पर उत्तम लिखा है कि 'जब तक गेहूं का दाना पृथिवी में गिर कर मर नहीं जाता अकेला रहिता है परन्तु जब मर जाता है वहुतसा फल अपने साथ लाता है। इसी प्रकार जो भी मनुष्य अपने प्राणों से स्नेह रखता है उन्हें खो देता है और जो जगत् अपने प्राणों से द्वेष रखेगा वह उसे सदैव के लिये सुरक्षित कर लेगा, वास्तविक उन्नति एवं विकास का भेद यहीहै यही उन्नति की कुञ्जी है। ईसाई इसका बर्त्ताव करेंगे तो फल पायेंगे हम करेंगे तो हम फल पायेंगे यहां लिखने का फल नहीं किन्तु करने का है। विकास तथा उन्नति की इच्छा करने वालों के लिये अति उचित है कि वे अपनी सत्ता उसको अर्पण करें। हम अवनति

पर हैं हमारी दशा अति ही शोचनीय है अत एव आवश्यकता है कि हम अपने आपको विकास की ओर झुकायें तथा लगायें। और इसका साधन केवलमात्र यही है कि हम अपने आपको दूसरों के अर्पण कर देवें अर्थात् हमारे भीतर आत्मश्लाघा का नाम व निशान न हो और हम सदैव अपने जीवन की आलोचना करते हुये परोपकार की वृत्तिको जीवन का लक्ष बना कर अपने आपको समाप्त करदें उसके फलकी गवेषणा की कोई आवश्यकता नहीं नही हम अपने नेत्रों उसे देख सकते हैं भगवान् कृष्ण के कथनानुसार 'कर्म करना हमारा काम है फलकी अकांक्षा करनी हमारा नही है, यही उन्नति का मार्ग है इसी से विकास होताहै और यही हमारे जीवन का उद्देश है।

हमारे विषय में कयी एक संस्कार इस प्रकार के होते हैं कि हम उन्हें वैसा अनुभव में नहीं लाते जैसा कि हमारा कर्त्तव्य होता है अस्तु हमें महात्मा बुद्धके ये शब्द याद कर लेने चाहिये कि 'प्रत्येक मनुष्य की उन्नति एवं विकास उसके

अपने आप पर निर्भर है और इसके उच्च भावों की कुञ्जी उसके अपने पास है,

'समाप्ति और अन्तिम प्रार्थना,

जो कुछ लिखना था लिखदिया यद्यपि अभी कयी एक बातें और भी थीं परन्तु काम और भी है अत एव यहां ही समाप्तकरके अपने सब भाइयों से प्रार्थना करनेकी इच्छा है।

सज्जनो! आप जीनाचाहते हैं आपको और मुझ को जीनेकी इच्छा है ईश्वर आपको सदैवका जीवन देनेवालेहैं ये सर्वदुःख भञ्जक हैं उससे प्रथक् होकर हमें कहीं से भी जीवन प्राप्ति संभव नहीं। परन्तु आपके लिये भी उचित है कि अपने ऊपर दृष्टि पात करते रहें ताकि कहीं कोमल हृदय में अपवित्रता न घुस जाये और पक्षपात तथा दोषान्वेषण का निशानभी दिखाईनदेनेपाये अन्यथा मृत्यु उत्पन्न होगी। इस छिद्रान्वेषण की ज्वालासे सदैव अपना आप बचाये रखना। यह बहुत बुरीबला है इसने बड़ों बड़ों के छिक्के छुड़ा दिये हैं। यह जिसके भीतर भी घुसजाती है दग्ध करदेतीहै आगे पीछे

के योग्य इसने किसीको नहीं छोड़ा। इससे बचते रहो और प्रत्येक समय गुलाब के फूल के समान खिले रहो। ताकि तुम्हारी सुगन्धिसे सब सुगन्धित होते रहें। अपने मस्तक को खुला रक्खो ताकि प्रेम मयी सूर्य्यकी किरणें उसमें उत्तमतया चमक दमकके साथ पड़सकें। जिससे कि प्रकाशित होकर आप सब को प्रियही प्रिय प्रतीत हों। अपने मस्तकमें तङ्गी मत आने दो यह मृत्यु का चिन्ह हैं। तुम अपना काम करते चले आओ ईश्वर तुम्हारा मस्तक चूमेंगे, वे तुम्हारी रक्षा में होंगे यह परवाह मत करो कि जगत् तुम्हें क्या कहिता है और क्या २ कलङ्क तथा लाञ्छन लगाता है यदि तुम्हारा हृदय पवित्र है यदि तुम सच्चे हृदय से अपने काम में मग्न हो तो जगत् तुम्हारे पांवकी धूलिकोभी ठेस नहीं लगा सकता। सम्भव है कि दो चार मनुष्य तुम्हारे विरुद्ध होजायें यह भी संभवहै कि तुमपर नाना कलङ्क लगा दो चार मनुष्यों में अपने आप को चतुर कहाने का अवसर पालें परन्तु सचजानो तुम्हारे भीतरी आनन्द और आत्मिक शक्तिको

नहीं छीन सकेंगे यह उनकी शक्ति से बाहिर है। तुम ज्यूं २ काम करते जाओगे त्यूं २ तुम्हें मालूम होता जायेगा कि तुम्हारा पांव आगे पड़ता है अथवा पीछे।

वैसे तो हमारे सबके हृदय आशाओं एवं उमङ्गों से भर रहे हैं और उनमें इनकी भरमार होरही है। परन्तु इनकी पूर्त्ति में जो २ भी विघ्न आते हैं उन का सामना करनेवाले हमारे में बहुत कम हैं। अस्तु तुम्हारा काम है कि तुम उनसे खूब युद्ध करो और सांसारिक आपत्तियों से लड़मरो परन्तु अपने हृदय में किसी प्रकार की मलिनता न आने पावे यही तुम्हारा काम है और जीवनोद्देश है।

प्यारे नवयुवको! आओ प्रतिज्ञा करलो कि 'हम छिद्रान्वेषण करने वाले जगत् की कुछ परवाह न करते हुये अपने विवेकानुसार जीवन के उस उच्च उद्देशको पूर्ण करेंगे जो कि प्रकृति ने हमारे लिये नियत करदिया है'

यह सन्यासी के शब्द हैं इनपर चलदो तुम्हारी विजय होगी तुम्हारा विरोधी जगत् तुम्हारा मुंह ताकता रह जायेगा तुम जगत् के उच्च संस्कारों को पालोगे। विजय का डङ्का तुम्हारे नामपर बजजायेगा। प्रकृति तुम्हारी दासी है तुम उसके स्वामी हो वह तुम्हारा विरोध कभी न करेगी कुत्तों के समान एकदूसरे से लड़ना मरना कल्याण का हेतु नहीं होगा किन्तु प्रेम भरा जीवन व्यतीत करना ही उत्तम होगा।

इस लिये सच्चे हृदय से देशजाति एवं अपनी कल्याण के साधनों को एकत्र करने का यत्न करते रहिना ही तुम्हारा कर्त्तव्य है जगत् का न तो किसी ने मुख बन्द किया और नही कोई करसकता है वह जो कुछ भी कहिना चाहता है कहिने दो परन्तु अपने स्वभाव से हमे भी न टलना चाहिये यही तो मानुषी गुणहैं इसी को प्रतिज्ञा कहितेहैं

जो कुछ भी करो सच्चे हृदय से करो यह मत समझो कि कोई निरीक्षक नहीं है नहीं वह सदा हमारे हृदय में विद्यमान् है॥

भारत के विगत रत्नों

की एक अपू ं छटा

अर्थात् मुनि चरित्र माला ।
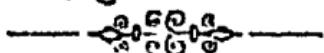
किसी भी जातिको अपने विगत गौरव की ओर झुकाने के लिये इस से उत्तम कोई साधन नहीं कि उसी जाति के विगत महानुभावों ऋषियों एवं मुनियोंके जीवन उसके सामने रक्खेजायें जिससे कि वह उनके जीवन की चाल ढालसे अपनी चाल ढालको पूर्ण प्रकार से संभालसके और अपने अतीत गौरव को पुनः प्राप्त कर सके इससे न केवल उसे आत्मरक्षा काही ध्यान आजाताहै किन्तु उसे अपने आपके सुधार का भी एक अपूर्व अवसर

हाथ आजाता है अत एव विचार किया गया है कि भारत के विगत महानुभावों के (यथा गोतम कपिल पतञ्जलि—धन्वंतरि नचकेता इत्यादि) अपनी शक्ति भर अनुसन्धान से यथा प्राप्त जीवन चरित्र हिन्दी पठित जगत् के लिये लिखे जायें।

इसलड़ी मे प्रथम गुच्छक लिखा जाचुका है जिस में गोतम कपिल तथा पतञ्जलि का जीवनहै दूसरा लिखा जारहा है इस मे पाणिनि कात्यायन तथा विश्वामित्रके जीवन होंगे इसी प्रकारसे आगे भी होता जायेगा इनके उत्पत्ति आदि के समयपर भी पुष्कल विचार किया गया है॥

जिस सत्पुरुष को इनके देखने की इच्छा हो। बा॰ राम स्वरूप बिश्णोई मुहल्ला नगीना जि॰ बिजनौरकी मारफत पत्र भेजकर मगवासकताहै।